ओ३म्

अमृत पथ

भाग-२

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्



ईश्वर का सच्चा स्वरूप

वही परमेश्वर है

सृष्टि को रचाने वाला, सृष्टि को चलाने वाला
सृष्टि को मिटाने वाला, वही परमेश्वर है।
जो कर्मों का फल देता, नहीं पक्षपात से देता।
यथायोग्य फल देता, वही परमेश्वर है।।
जो कभी न मरता जीता, नहीं किसी ने उसे जीता।
उसी ने सबको जीता, वही परमेश्वर है।।
कण-कण में वही समाया, है उसीकी भौतिक माया।
योगी ने उसी को ध्याया, वही परमेश्वर है।।
है दिव्य-दयालु दाता, सब भाँति सुखों का दाता।
है श्रेष्ठ मोक्ष फल दाता, वही परमेश्वर है।।
जो श्रद्धा से वर लेता, ईश्वर उसको वर देता।
'दिव्यानन्द' में लेता, वही पमेश्वर है।।

(स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती)

सच्चे ईश्वर की कसौटी

1. जो सृष्टि की रचना, पालन व संहार करता है।
2. जो सब जीवों को कर्मानुसार फल प्रदान करता है।
3. सृष्टि के आदि में जिसने भाषा व ज्ञान दिया है।
4. जो न जन्म लेता है और न मरता है।

॥ ओ३म् ॥

अमृत पथ

भाग-2

लेखक
कृष्णऔतार
पूर्व मन्त्री आर्य समाज
बढ़ापुर (बिजनौर)-246724
एवं
डॉ॰ रामावतार अग्रवाल
9, साउथ एवेन्यू, चौबे कालोनी
रायपुर (छत्तीसगढ़)-492001

सम्पादक
अजय आर्य







विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
4408, नई सड़क, दिल्ली-110006, भारत
दूरभाष : 23977216, 65360255
टेलिफेक्स: 23977216
E-mail:ajayarya@vsnl.com
Website:www.vedicbooks.com

प्रथम संस्करण : 2007
मूल्य : 20.00. रुपये
मुद्रक : अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

ओ३म्

प्रेमोपहार

श्री...को

सप्रेम भेंट।

भेंटकर्त्ता:...................................

सत्ता तुम्हारी भगवन्

सत्ता तुम्हारी भगवन जग में समा रही है।
तेरी दया-सुगन्धी हर गुल में आ रही है।।
रवि-चन्द्र और तारे, तूने बनाये सारे।
इन सब में ज्योति तेरी, इक जगमगा रही है।।
विस्तृत वसुंधरा पर सागर बहाये तूने।
तह जिनकी मोतियों से अब चमचमा रही है।।
दिन-रात, प्रात: सन्ध्या-मध्याह्न भी बनाया।
हर ऋतु पलट-पलट कर करतब दिखा रही है।।
सुंदर सुगन्धि वाले पुष्पों में रंग तेरा।
यह ध्यान फूल पत्ती तेरा दिला रही है।।
हे ब्रह्म विश्व कर्त्ता। वर्णन हो तेरा कैसे।
जल-थल में तेरी महिमा हे ईश! छा रही है।।

ईश्वर को ढूंढने का वैदिक स्वरूप क्या है?

ईश्वर को ढूंढने का वैदिक स्वरूप क्या है?
अनजान है ये दुनिया, कुछ भी नहीं पता है।।
तप त्याग भावना से, निष्कार्म कर्म करना है।
ऊँचे चरित्रवाला इन्सान देवता है।।
ईश्वर को ढूंढने का...

जब हो प्रभु से मिलना, इच्छा हो दर्शनों की।
इसका सही तरीका, वैदिक सन्ध्या उपासना है।।
अन्तःकरण की शुद्धि करके, शरीर निर्मल करना।
उसके समीप जाना, ऋषियों का रास्ता है।।
ईश्वर को ढूंढने का...

एकान्त शान्त मन हो, घर हो या नदी किनारा।
हो 'ओ३म्' जप निरंतर, कण-कण में जो बसा है।
यम-~~ग्रह~~-नियम का निभाना, कर्त्तव्य नित्य जानो।
इसके बगैर कोई रास्ता न दूसरा है।।
ईश्वर को ढूंढने का...

आसन लगाके बैठो, व प्राणायाम करना है।
फिर प्रत्याहार होकर, धारणा-ध्यान करना है।।
तब ध्यान मग्न होकर, ऐसी लगे समाधि।
यह भी 'पथिक' न सूझे, संसार क्या चीज है।।
ईश्वर को ढूँढने का वैदिक स्वरूप क्या है?

—सत्यपाल पथिक

अनुक्रमणिका

दिव्य सम्मतिः

पथिक जब पथ में यात्रा करने के लिए तत्पर होता है, तो अनेक प्रकार के वृक्ष, वनस्पति, खेत, हरियाली, उजाली, पहाड़, नदी नाले, मरुस्थल आदि प्राकृतिक दृश्य सामने आते हैं और निकल जाते हैं। उसी प्रकार झोंपड़ी, मकान, कोठी, फ्लैट्स, अपार्टमेन्ट आदि भवनों के दर्शन होते जाते हैं। परन्तु इन भवनों में रहने का रहस्य या आनन्द नहीं प्राप्त होता। इन जड़ पदार्थों के अतिरिक्त अनेक पशु-पक्षी तथा स्त्री पुरुषों के दर्शन होते हैं, परन्तु उनके साथ न राग होता है न द्वेष।

उक्त सिद्धांत के अनुसार अमृतत्त्व (मोक्ष) की प्राप्ति के पथ पर चलने वाले को विभिन्न ज्ञान के साधनों की आवश्यकता होती है। उस ज्ञान को प्राप्त कर ज्ञानी-कर्म की ओर उन्मुख होता है, फिर उपासना के क्षेत्र में प्रवेश करके विज्ञान रूपी सफलता को प्राप्त करता है। इसी दृष्टि से रहस्य को उदघाटित करने के लिए श्री कृष्णाऔतार जी ने अनेक विषयों को 'अमृतपथ' में संकलित करके स्वयं लिखकर प्रकाशित किया है। आपके लघु भ्राता डॉ. रामावतार अग्रवाल, रायपुर वासी ने भी अपने लेखों में अनेक विषयों को स्पष्ट किया है।

इस प्रकार 'अमृत पथ' नामक लघु-ग्रन्थ में अनेक विषयों का रहस्योद्घाटन किया है।

यह ग्रन्थ पाठकों के लिए अवश्य लाभकारी सिद्ध होगा। मैं भी मंगल कामना एवं दिव्य सम्मति प्रस्तुत करता हूँ।

शुभैषी

दिव्यानन्द सरस्वती

अध्यक्ष पांतजल योगधाम आर्यनगर हरिद्वार

समर्पण

अपनी जीवन संगिनी श्रीमती कमला देवी
की पुण्य-स्मृति में समर्पित

जिनके सहयोग से मैं सामाजिक एवं आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करके लेखक एवं योग-प्रशिक्षक बन सका। श्रीमती कमला देवी ने महिला आर्य समाज के मंत्री पंद पर रहते हुए अनेक वर्षों तक पारिवारिक यज्ञ एवं सत्संगों का आयोजन किया तथा अनेक योग शिविरों में सहभागी रही।



7 सितम्बर 1932–5 जुलाई 2006

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

गीता 2/22

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरि हार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।

गीता 2/27

जैसे पुराने त्याग कर नव वस्त्र बदलें सभी।
यों जीर्ण तन को त्याग, नूतन देह धरता जीव भी।।
जन्मे हुए मरें, मरे निश्चय जन्म लेते कहीं।
ऐसी जो अटल बात है, उसकी उचित चिंता नहीं।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

अन्त मती सो गती

यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम्। तत्र योनिं कृणवसे।।

सामः: 706

अर्थः परमेश्वर जीव से कहते हैं **(यत्र क्व च)** जहाँ कहीं भी **(ते मनः)** तेरा मन होता है, अर्थात् प्रयाणकाल में जो भी भावना तेरे मन में प्रबल होती है **(तत्र योनिम् कृणवसे)** उसके अनुसार ही तू अपने भावी जन्म-स्थान को बनाता है और **(उत्तरम् दक्षम दधसे)** उस जीवन में उन्नति के लिए उत्कृष्ट बल को धारण करता है।

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः।
सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति।।

प्रश्नोपनिषद्: 3.10

अर्थः- मरते समय आत्मा का जैसा संकल्प होता है, मन अंत समय में जैसा चिंतन करता है, उस सकंल्प के साथ मन इन्द्रियों के साथ मुख्य प्राण में स्थित हो जाता है और वह मुख्य प्राण जीवात्मा को अन्तिम संकल्प व चिंतन के अनुसार अगले जन्म में उन्हीं वस्तुओं की प्राप्ति योग्य शरीर धारण कराता है।

गीता में भी इन्हीं विचारों को व्यक्त किया है

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्!
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः।।

8.6

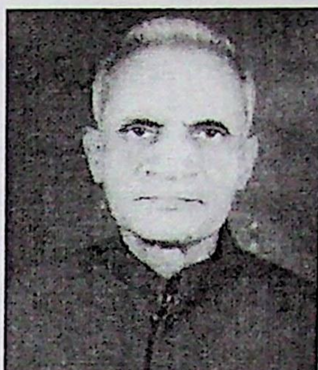
अन्तिम समय तन त्यागता, जिस भाव से जन व्याप्त हो।
उसमें रंगा रहकर सदा, उस भाव ही को प्राप्त हो।।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

गीता: 8.13

मेरा लगाता ध्यान कहता 'ओ३म्' अक्षर ब्रह्म ही।
तन त्याग जाता जीव जो, पाता परम-गति वही।।

जो मानव अपने जीवन में जिन विचारों व भावनाओं का स्मरण करता है। उसका मन सदा उन्हीं भावनाओं में लगा रहने के कारण देह छोड़ने के बाद उन्हीं भावनाओं के अनुसार अगला जन्म--नया शरीर व नया परिवार प्राप्त करता है।



कृष्णऔतार

लेखक-परिचय

लेखक का जन्म भाद्रपद शुक्ल अष्टमी 3 सितम्बर सन् 1930 को जनपद बिजनौर के नगर नगीना में एक साधारण वैश्य परिवार में हुआ। माता जी का नाम श्रीमती कमलादेवी तथा पिता जी का श्री नन्हेमल जी और बाबा जी का श्री करोड़ीमल जी था। हाईस्कूल तक की शिक्षा नगीना में प्राप्त करने के पश्चात् एस. एम. डिग्री कॉलेज चन्दौसी में शिक्षा प्राप्त की। 13-14 वर्ष की आयु में ही माता जी से गीता पाठ एवं गायत्री जप की शिक्षा मिली तथा विद्यार्थी जीवन में गीता प्रेस गोरखपुर का काफी साहित्य पढ़ा।

नगीना के निकट कस्बा बढ़ापुर के सेठ ज्योति प्रसाद जी एवं श्रीमती कलावती देवी की एकमात्र कन्या श्रीमती कमला देवी के साथ दाम्पत्य सूत्र में बंधने के पश्चात् 1950 में बढ़ापुर में कपड़े का व्यापार आरम्भ कर दिया तथा आर्य समाज के सम्पर्क में आये। श्री बलबीर सिंह जी बेधड़क आर्य भजनोपदेशक की विशेष प्रेरणा से तथा अन्य आर्य विद्वानों से शंका समाधान करके तथा वैदिक साहित्य के स्वाध्याय एवं सत्संगों द्वारा जीवन धारा ही बदल गई। जब सत्य सामने आया तो असत्य अपने आप छूट गया। जीवन में भाई डॉ. प्रेस्वरूप जी गुप्ता एवं भाभी सुशीला गुप्ता से विशेष मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ।

वर्ष 1965 में आर्य समाज बढ़ापुर के मंत्री पद पर चुने जाने पर लगभग तीस वर्षों तक मंत्री एवं कोषाध्यक्ष के रूप में तथा बाद में अंतरंग स्वसन्य के रूप में समाज सेवा में लगे हैं। वर्ष 1969 में बढ़ापुर में श्री फकीरचन्द आर्य विद्यालय की स्थापना में तन-मन व धन से सहयोग दिया तथा 12 वर्षों तक विद्यालय के प्रबंधक रहते हुए विद्यालय में प्रत्येक शानिवार को यज्ञ एवं प्रवचन करते व कराते रहे। इसी अवधि में चारों वेदों से वृहद यज्ञ

कराने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ।

नोट (श्री फकीर चन्द्र जी डॉ. प्रेमस्वरूप श्री गुप्त के बाबा जी एवं आर्य समाज के संस्थापक थे।)

वर्ष 1975 से इंदौर मध्यप्रदेश के ब्रह्मऋषि स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती योगाचार्य से हापुड़ आर्य समाज द्वारा आयोजित योग शिविरों में सपत्नीक कई वर्ष योगाभ्यास सीखा तथा वर्ष 2000 से पातंजल योग धाम, आर्य नगर हरिद्वार के अध्यक्ष पूज्यपाद योग शिरोमणि डा. दिव्यानन्द जी सरस्वती के निर्देशन में योग जीवन पद्धति पर चल रहे हैं। तथा अब बढ़ापुर आर्य समाज के माध्यम से दैनिक योग प्रशिक्षण देने का प्रयास कर रहा हूँ, इसके लिए दिनांक 3 अक्टूबर से 8 अक्टूबर 2007 तक एक योग शिविर नै० ब्र० माधुरी योगमती जी योगाचार्य तथा मनदीप जी वेदालंकार के निर्देशन में आयोजित किया है।

गृहस्थाश्रम के सभी दायित्वों से मुक्त होकर शेष जीवन समाज एवं राष्ट्र की सेवा में समर्पित है। इन सभी कार्यों में धर्मपत्नी श्रीमती कमला देवी का भरपूर सहयोग प्राप्त होता रहा। उन्होंने भी कई वर्षों तक महिला समाज के मंत्री पद पर रहते हुए पारिवारिक यज्ञों एवं सत्संग के कार्यक्रम चलाये। अब यह अमृतपथ का दूसरा भाग उन्हीं की पुण्य-स्मृति में प्रकाशित कराकर आपके सामने प्रस्तुत है। इस पुस्तक में मेरा अपना कुछ नहीं है। सब कुछ महर्षिदयानन्द, आर्य विद्वानों, वैदिक साहित्य एवं योग-साधना तथा प्रभु की महान कृपा एवं प्रेरणा से प्राप्त विचारों को संग्रह करके सर्वजन हितार्थ लेखनी बद्ध कर दिया है।

इस पुस्तक में तीन अत्यन्त उपयोगी एवं प्रेरणादायक लेख अपने छोटे भाई डॉ. रामावतार अग्रवाल, रायपुर छत्तीसगढ़ निवासी के भी सम्मिलित किए हैं। आप भी अनेक वर्षों से धर्म-साधना वेदों व अन्य वैदिक साहित्य के स्वाध्याय, चिंतन, अनुसंधान एवं लेखन कार्यों में लगे हैं तथा प्रभु कृपा से सब प्रकार से सम्पन्न वैदिक स्वर्ग (गृहस्थाश्रम) का सुख प्राप्त कर रहे हैं।

अंत में सभी सहयोगियों और पुस्तक के सम्पादक श्री अजय आर्य जी का सहयोग प्राप्त करके उनका आभारी हूँ और हार्दिक धन्यवाद प्रकट करता हूँ।

विनीत

कृष्णऔतार

पो. बढ़ापुर (बिजनौर)-246724 उ० प्रदेश

दूरभाष: 01343-265035

अमृत पथ

संसार का प्रत्येक व्यक्ति अमृत प्राप्त करना चाहता है। अमृत प्राप्त करने के लिए, '**अमृत**' क्या है? और उसे प्राप्त करने का सत्य पथ कौन सा है,का ज्ञान प्राप्त करना होगा।

अमृत क्या है? अ+ मृत जो मृत नहीं है।

(1) सौ या सौ वर्ष से अधिक सुस्वास्थ्य के साथ सुखपूर्वक जीना '**अमृत**' है

(2) 'अमृतं वै प्राणः' = प्राण का नाम अमृत है क्योंकि प्राण से ही मनुष्य पूर्णायु होता है।

(3) 'अमृतं आपः' = आप (वीर्य) अमृत है क्योंकि वीर्य को धारण करने से मनुष्य मृत्यु को परे धकेल देता है।

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवाः मृत्युमपाघ्नत"

अथर्ववेदः 11.5.18

(4) 'यद भेषज तद् अमृतं' = औषधि अमृत है क्योंकि वह रोग का निवारण करके मृत्यु से बचाती है।

(5) 'अमृतं तद् ब्रह्म' = जो अमृत है वह ब्रह्म है।

जो कुछ सुखी करने वाला, आनन्दित करने वाला, सु–स्वास्थ्य देने वाला, आयु बढ़ाने वाला, मोक्ष–प्राप्त कराने वाला है, वह सब अमृत है उससे उलटा जो कुछ है वह सब मृत्यु है।

अमृत पथ का ज्ञान हमें वेद माता निम्न मंत्र द्वारा करा रही है।

ओं स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥

ऋग्वेदः 5.51.15

सूर्य चन्द्र की भाँति जगत में 'अमृतपथ' के अनुगामी हों।
ज्ञान और निज शुभकर्मों से सुख पावें जग नामी हों।।
दानी, अहिंसक, विद्वानों का साथ सदा जग में पावें।
हे परमेश्वर! इस जीवन में शुभ कर्मों के पथ जावें।।

अमृत-पथ का पथिक बनने के लिए अपने जीवन को सूर्य के समान तेजस्वी, वर्चस्वी तथा चन्द्रमा के समान शीतल, शांत एवं आह्लादक बनावें और सदैव दानियों, अहिंसकों और ज्ञानी-विद्वानों की ही संगति करें।

निम्न वेद मंत्र में परमेश्वर ने अपने सभी पुत्र/पुत्रियों को 'अमृत-पथ' योग-जीवन-पद्धति पर चलने का उपदेश दिया है। अतः हम किसी कुशल योगदाचार्य से सीख कर नियमित रूप से इस अमृत-पथ पर चलें।

विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युर अमृतं न ऐतु।
इमान रक्षतु पुरुषान् आ जरिम्णो मोष्व-एषाम् असवो यमंगुः।।

अथर्ववेदः 18.3.62

भावार्थः (विवस्वान्) योगयुक्त आचार्य हमें अमृतत्व में स्थापित करे योग-पद्धति प्रदान करे, जिससे मृत्यु परे चली जाये और हमें अमृत की प्राप्ति हो। योगाचार्य हमें जीर्णता से सर्वथा बचाये तथा इनका जीवन मृत्यु न ले जाये।

जीवन की दो ही पद्धतियाँ हैं (1) योग-जीवन-पद्धति और भोग-जीवन पद्धति। योग-जीवन पद्धति ही 'अमृत-पथ' है। योग-जीवन-पद्धति से अमृतत्व की प्राप्ति होती है और भोग-जीवन पद्धति से मृत्यु (रोग-शोक) की प्राप्ति होती है। भोग और रोग यम (मृत्यु) के दूत हैं।

पं. सत्यपाल जी 'पथिक' का निम्न गीत योग-जीवन पद्धति पर चलने की सरल एवं सुन्दर प्रेरणा दे रहा है।

साधक बन कर करो साधना 'अमृत' का भण्डार मिलेगा।
मानव जीवन सफल बनेगा, परमेश्वर का प्यार मिलेगा।

सत्य, अंहिसा को अपनाना, ब्रह्मचर्य को धारण करना।
चोरी तजना, लोभ त्यागना, अपने दोष निवारण करना।
परम–प्रभु के पावन पथ पर बढ़ने का अधिकार मिलेगा।
साधक...

शौच तथा संतोष संवारे, तन का चोला, मन का दर्पण।
तप स्वाध्याय निरंतर होवे, ईश्वर के प्रति आत्म–समर्पण।
यम नियमों का पालन करिए, भक्ति को आधार मिलेगा।।
साधक...

आसन–प्राणायाम के द्वारा स्वस्थ, निडर, बलवान बनोगे।
करके प्रत्याहार–धारणा, योगनिष्ठ इंसान बनोगे।
अंतःकरण पवित्र बनेगा, शुद्ध सरल व्यवहार मिलेगा।
साधक...

लीन हुए जब ध्यान लगाकर–प्रभु द्वारे तक आ जाओगे।
लगी समाधि, मिली सफलता, परम तत्व को पा जाओगे।।
करो 'पथिक' अष्टांगयोग फिर समय न बारम्बार मिलेगा।
साधक बनकर करो साधना–अमृत का भण्डार मिलेगा।।

–कृष्णऔतार, बढ़ापुर

महर्षि दयानन्द तुमको प्रणाम

छाया था भारत के नभ में, जब घोर निशा का अंधकार।
जब भी प्रकाश की रश्मि नहीं देती दिखलाई क्षितिज पार।।
पथभ्रष्ट व्यथित इस आर्य जाति के पास रहा सुख का न नाम।
तब प्रकट हुए तुम आशा निधि। हे अरुणोदय! तुमको प्रणाम्।।
हे ऋषिवर तुम्हें प्रणाम्।

राज्य व्यवस्था में योग की उपयोगिता

त्रीणि राजाना विद्थे पुरुणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि॥

ऋग्वेद: 3.38.6

ऋग्वेद के इस मंत्र में ईश्वर उपदेश करता है कि राजा और प्रजा के पुरुष मिलकर सुख प्राप्ति और विज्ञानवृद्धि कारक राजा-प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार में तीन सभा अर्थात् विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा, राजार्य सभा नियत करके बहुत प्रकार के समग्र प्रजा सम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को सब ओर से विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें। (सत्यार्थ प्रकाश-छठा समुल्लास)

देश के दुर्भाग्य से आज तीनों ही सभायें अपने-अपने दायित्वों में विफल होकर देश को विनाश-पतन की ओर ले जा रही हैं। विद्यालयों में विद्या बिक रही है, न्यायालयों में न्याय बिक रहा है, धर्म स्थलों पर धर्म व भगवान भी बिक रहे हैं। तथा शासक एवं अधिकारी वर्ग अधिकांश चोर, लुटेरे व डाकू हो गये हैं।

महर्षि दयानंद सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में लिखा है (राज्य के) सब सभासद और सभापति (मंत्री, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति) इंद्रियों को जीतने अर्थात् अपने वश में रखकर सदा धर्म में बर्ते और अधर्म से हटे-हटाये रहें, इसलिए दिन-रात नियम समय में योगाभ्यास भी करते रहें। क्योंकि जितेन्द्रिय अपनी इंद्रियों (जो मन, प्राण, और शरीर प्रजा है इस) को जीते बिना बाहर की पूजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता।

स्वच्छ शासक ही स्वच्छ शासन की स्थापना करता है। स्वच्छ

शासक में निम्न आठ गुण होने चाहिए।

सत्यं वृहत ऋतम उग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। अथर्ववेदः 12.1.1

1. राष्ट्र के प्रति सत्य व्यवहार, 2. राष्ट्र को महान बनाने की भावना, 3. न्याय युक्त व्यवहार एवं मर्यादा पालन, 4. तेजस्विता–वीरता, 5. दृढ़ संकल्प, 6. कष्टों द्वन्दों को सहना, 7. ब्रह्म ज्ञान, 8. यज्ञ, देवपूजा संगतिकरण, दान।

वर्तमान शासकों में एवं अधिकारियों में कुछ अपवादों को छोड़कर इन गुणों का अभाव होने से संपूर्ण राजनीति भ्रष्ट एवं गन्दी हो गई है। सत्यमेव जयते के स्थान पर असत्यमेव जयते हो रहा है। सत्य का गला घोटा जा रहा है।

राजसत्ता जब ज्ञान सत्ता (ब्रह्म सत्ता) के अनुसार कार्य करती है, तभी राष्ट्र में सुख–धारायें बहती हैं।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यंच्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रशेषं यत्र देवाः सहाग्निना।

यजु॰: 20.25

वेदों के अनुसार राज्य पर सत्पुरुषों, ऋषियों का नियंत्रण होना चाहिए, क्योंकि सुख की धाराएँ जनमत संगह्र से नहीं, सन्तों व योगियों के व्यापक हृदयों से ही प्रवाहित होती हैं। जनमत के आधार पर जो राज्य व्यवस्थायें चल रही हैं, वे सभी भ्रष्ट हैं।

मनुष्य यदि सत्पुरुष एवं चरित्रवान है तो नौकरशाही भी स्वच्छ लोकशाही में बदल जाती है और राज्य सदैव जनकल्याणकारी हो जाता है। राज्य का उद्देश्य जन कल्याण करना है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के राज्य में ब्रह्मज्ञानी, योगाभ्यासी, आत्मदर्शी अधिकारी राज्य–प्रबंध करते थे।

योग की उपयोगिता

महर्षि पतंजलि ने वेदों से खोज (रिसर्च) करके विश्व कल्याण के लिए अष्टांग–योग जीवन पद्धति प्रस्तुत की है, जिस पर

चलकर समस्त संसार को स्वर्गधाम बनाया जा सकता है।

योग के आठ अंग

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

1. यमः–यम पाँच हैं, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। ये पाँच यम वैदिक संस्कृति के आधार स्तम्भ हैं, तथा देशकाल और समय की सीमा से रहित–सर्वाभौम, सब अवस्थाओं में पालन किए जाने वाले महाव्रत हैं, सामाजिक धर्म हैं। यदि संसार के सभी स्त्री–पुरुष इन महाव्रतों का पालन करें तो संसार के सारे क्लेशों, दुःखों व अभावों का अन्त हो सकता है। इनका पालन किये बिना कोई भी व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व सुखी नहीं हो सकता। हमारे वैदिक ऋषियों की यह अनुपम खोज है।

विचार कीजिए जब कोई किसी से वैर–विरोध, हिंसा नहीं करेगा, असत्य–झूठ नहीं बोलेगा, चोरी नहीं करेगा, रिश्वत नहीं लेगा, न मिलावट करेगा, दुराचार–व्यभिचार नहीं करेगा, दिव्य–गुणी संतति को जन्म देगा और आवश्यकता से अधिक संग्रह नहीं करेगा तो हथियारों की होड़ समाप्त होकर युद्धों का भय समाप्त हो जायेगा, सारे मुकदमें समाप्त हो जायेंगे, भ्रष्टाचार, आतंकवाद आदि सभी समस्यायें समाप्त होकर संसार स्वर्गधाम बन जायेगा। सारा विश्व एक कुटुम्ब के समान हो जायेगा।

2. नियमः– नियम भी पाँच हैं–शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय ईश्वर प्राणिधान।

ये पांचों व्यक्तिगत धर्म हैं। इनका पालन करने से मानव दिव्यगुणी बनकर, ईश्वर जीव व प्रकृति का साक्षात्कार करके परमानन्द को प्राप्त कर लेगा। जो मानव जीवन का परम लक्ष्य है।

राज्य व्यवस्था में ब्रह्मचर्य की उपयोगिताः

पाँच यमों में यह चौथा महाव्रत है।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं रक्षति
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणम् इच्छेत॥

अथर्व: 11.5.1

ब्रह्मचर्य: अर्थात आत्म संयम और तप से राजा/ राष्ट्रपति राष्ट्र की रक्षा करता है। विषयी राजा राष्ट्र की पराधीनता का कारण बनता है। आचार्य ब्रह्मचर्य से ब्रह्मचारी की इच्छा करता है। महर्षि दयानन्द ने कहा था इस देश का पतन ब्रह्मचर्य नाश से हुआ है। और उत्थान भी ब्रह्मचर्य पालन से होगा।

राष्ट्र का निर्माण ब्रह्मचारी राजा और ब्रह्मचारी आचार्य के संयोग से ही होता है। **आचार्य शिक्षण प्रशिक्षण** द्वारा राष्ट्र के **नागरिकों व नागरिकाओं** के जीवन का निर्माता होता है, और राजा होता है उनका शासक।

राष्ट्र निर्माण में सर्वप्रथम आवश्यकता होती है–ब्रह्मचर्य निष्ठ आचार्यों की। ब्रह्मचर्य सिद्धआचार से युक्त व्यक्ति ही शिक्षक का सुपावन पद ग्रहण करे–अन्य नहीं। राजा तथा शासन अधिकारी वे ही होवें जिन्होंने ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्याध्ययन किया हो और ब्रह्मचर्यपूर्वक गृहस्थ धर्म का पालन करते हों। ब्रह्मचर्य द्वारा साधना योगाभ्यास से ही होती है। योग साधना से ही मानव व्यक्तित्व का सर्वांगिण विकास अथार्त् शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक एवं सामाजिक विकास होता है।

अध्यापक/ आचार्य राष्ट्र निर्माता होते हैं–अत: उनका यह प्रमुख कर्तव्य है, कि वे स्वयं ब्रह्मचर्य के व्रती होकर राजा तथा प्रजा में ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा का सम्पादन करें। राष्ट्र का निर्माण न लोक सभाओं में होता है और न विधान सभाओं में। नागरिकों का जीवन कहीं बनता है तो विद्यालयों में सुयोग्य, चरित्रवान आचार्यों के द्वारा। नागरिकों का जीवन निर्माण ही राष्ट्र निर्माण है।

अत: राज्य व्यवस्था को आदर्श बनाने के लिए प्रत्येक विद्यालय, विश्वविद्यालयों गुरुकुलों तथा स्कूल-कॉलेजों में अवलिम्ब योग-प्रशिक्षण अनिवार्य कर दिया जाये।

–कृष्णऔतार, बढ़ापुर

जीवन-धन

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां न गादपरो अर्थमेतम्।
शतं जीवन्तु शरदः पुरुचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन।।

यजु०: 35.15

वेदमाता ने अपने सभी पुत्र-पुत्रियों (मनुष्यों) के लिए सौ वर्ष की आयु निर्धारित की है। मनुष्यों को चाहिए पुरुषार्थ के साथ जीवन को उच्च और उत्कृष्ट बनाकर मृत्यु को दबाता रहे अर्थात् ब्रह्मचर्य पालन तथा यम-नियमों का पालन करके मानव स्वस्थ, निरोग, लावण्ययुक्त होकर शतायु होवे।

जीवन धन सबसे बड़ा अमूल्य-धन है। अन्य सभी धन जीवन से ही जीवन के लिए कमाये जाते हैं। जीवन से ही धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की साधना की जाती है। खोया हुआ धन, ऐश्वर्य, राज्य सब कुछ पुनः प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु खोया हुआ जीवन पुनः उपलब्ध नहीं हो सकता। अतः प्रत्येक मानव को चाहिए इस अपने अमूल्य जीवन-धन को निकृष्ट कार्यों में विनष्ट न करे। जीवन का एक-एक क्षण बड़ा अमूल्य है, इन्हें सदैव उत्कृष्ट कार्यों-कर्मों में ही लगाये। इसी में जीवन की सार्थकता है। आत्म-हनन-आत्म-हत्या करना सबसे पड़ा पाप है, सबसे बड़ी कायरता है।

निम्न वेदमंत्र में जीवन धन की रक्षा का सरल व सहज उपाय बतलाया गया है।

ओं देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम्।
वृष्णामस्मभ्यमूतये।।

सामवेद: 138

इस संसार में देवताओं (इन्द्रियों) का रक्षण सबसे महान कार्य है। इस हमारे शरीर में इन्द्रियाँ देव हैं और इनका अधिष्ठाता आत्मा महादेव है। इन इन्द्रियों की रक्षा करना ही मानव जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य होना चाहिए, तभी जीवन धन की रक्षा हो सकेगी। मकान की रक्षा, सम्पत्ति की रक्षा, स्वास्थ्य का ध्यान, गृहस्थ का पालन ये सब आवश्यक बाते हैं। परन्तु सबसे बड़ी बात यह है कि हम अपनी इन्द्रियों की रक्षा करें इन्हें स्वस्थ व सुदृढ बनायें। ये इन्द्रियाँ ही वास्तव में (वृष्णाम्) सुखों की वर्षा करने वाली हैं और यही इन्द्रियाँ असंयमित अमर्यादित होकर, विषयों में फंसकर हमारे विनाश का कारण बनती हैं। जिन ज्ञानेन्द्रियों से प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करके हमें मृत्यु (दुःखों अभावों) को दूर करके ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करके अमृत को प्राप्त करना है वही इन्द्रियाँ असंयमित हो–विषयासक्त होकर नरक–दुःखों में डाल देती हैं। अतः हमारा यही सर्वप्रथम कर्त्तव्य है कि ये इन्द्रियाँ हमारी रक्षा के लिए हों। रक्षा की हुई इन्द्रियाँ हमारी समस्त अभिलाषाओं को सिद्ध करने वाली होती हैं।

जो व्यक्ति इन्द्रिय रक्षा रूप तप को अपनाता है, वह ओजस्वी होकर पनपता है। इस पृथिवी पर प्रतिष्ठित होकर अपने जीवन लक्ष्य परमानन्द (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

जीवन–धन समस्त धनों का परम–धन है अतः इसकी रक्षा बड़ी सावधानी एवं सतर्कता के साथ करें।

–कृष्णऔतार, बढ़ापुर

उन्नति के शिखर पर कैसे पहुँचें?

अग्निर्मूर्च्छा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्यां अयम्।
अपां रेतासि जिन्वति॥

सामवेदः 27

मानव जीवन वही सार्थक है जो अपने को ज्ञान के शिखर तक ले जाता है। ज्ञान-प्राप्ति के लिए ही परमेश्वर ने हमें इस पार्थिव शरीर का स्वामी बनाया है। जो मानव इस भौतिक शरीर की भौतिक वासनाओं को संयम में रखता है। वही अपने ज्ञान को बढ़ाने में समर्थ होता है। संयम के अभाव में ज्ञानवृद्धि संभव नहीं है। किसी भी इन्द्रिय का व्यसन लगा और प्रज्ञा का विनाश हुआ।

इस संयम की सिद्धि के लिए ब्रह्मचर्य वीर्य को धारण करना होगा। ब्रह्मचर्य पालन ही उन्नति के शिखर पर पहुँचने का मार्ग है।

सदैव स्मरण रक्खें– **'मरणं बिंदु पातेन–जीवनं बिन्दु धारणात्'।** वीर्य के गिरने से मृत्यु पतन के मार्ग पर जाते हैं और इसकी रक्षा धारण करने से उन्नति के मार्ग पर जाते हैं। वीर्य रक्षा हमें अशुभ-वृत्तियों से बचा कर उत्तम-गुणों से अंलकृत कर देगी। हमारा शरीर निरोग-स्वस्थ, मन विशाल व शुभ-संकल्पी और बुद्धि तीव्र होगी। इस प्रकार हम निर्भीक होकर इस जीवन यात्रा में उन्नति के शिखर पर पहुँच जायेंगे।

रज-वीर्य (सोम semen) इस शरीर में प्रभु द्वारा प्रदान की

गई सर्वोत्तम वस्तु है। आहार से रस, रस से रक्त, और रक्त से मांसादि के क्रम से सातवें स्थान में रज वीर्य की उत्पत्ति होती है। यह सोम ही ज्ञानाग्नि का ईधन होता है। इस सोम की रक्षा से ही हमारी ज्ञानाग्नि प्रज्वलित रह सकती है।

सोम रक्षा के बिना हमारे वैयक्तिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन की उन्नति सम्भव नहीं है। निम्न वेद मंत्र में सोम के सात गुणों को धारण करने का उपदेश दिया गया है।

ओं! पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।
रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः।।

सामवेदः 675

सोम को धारण करने से हमें निम्न सात गुणों की प्राप्ति होगी।

1. शरीर निरोग स्वस्थ व वज्र तुल्य बनेगा।

2. मनुष्य क्रियाशील पुरुषार्थी बनेगा।

3. शरीर, मन-बुद्धि निर्मल एवं श्री सम्पन्न हो जाते हैं। तथा आसुरी वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं।

4. वेद मंत्रों के तत्त्व ज्ञान को प्राप्त होकर प्रभु की उपासना के योग्य बनता है।

5. शरीर में एक स्वाभाविक आनंद का प्रवाह बहता है, जो शारीरिक स्वास्थ्य एवं मनः प्रासाद प्रदान करता है।

6. मनुष्य दिव्य-प्रवृत्ति वाला होकर राग-द्वेष से ऊपर उठ जाता है।

7. मस्तिष्क को, ज्योतिर्मय एवं ज्ञान सम्पन्न बनाता है। तथा ईश्वर जीव व प्रकृति का साक्षात्कार हो जाता है।

यह सोम रक्षा ही हमें ब्रह्मज्ञान प्राप्त कराने वाली तथा उन्नति के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचाने वाली है

–कृष्णऔतार, बढ़ापुर



जीवन महान् एवं यशस्वी कैसे बने?

'यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्' यजु०: 18.8

जीवन को महान् एवं यशस्वी बनाने के लिए हमें सत्य एवं असत्य का ज्ञान प्राप्त करके अज्ञान, अंधकार एवं अंधविश्वासों से निकल कर सत्य ज्ञान (वेद-ज्ञान) के प्रकाश में सुकर्म करते हुय यश की कामना वाला होना चाहिए। यश की कामना ही है, जो मनुष्य को उत्कृष्ट बनाती है और ऊँचा उठाती है। यश से बढ़कर संसार में दूसरा कोई सुख नहीं है। परमात्मा भी महान् यश वाला है यश स्वरूप है।–'यस्य नाम महद्यश:।' परमपिता परमेश्वर ने अपने सभी पुत्र/पुत्रियों को अपना जीवन उन्नत एवं महान् बनाने का आदेश दिया है।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आहिरोहेममृतं सुखं रथमथ जिविर्विदथमावदासि॥

अथर्ववेद: 8.1.6

ऊँचा चढ़ने व आगे बढ़ने के लिए ईश्वर ने प्रत्येक मानव को बुद्धि रूपी पिटारी दी है, जिसके द्वारा वह अपने जीवन को दक्षता (कुशलता) की निधि बना सकता है। मनुष्य का जीवन रथ अमृत से आपूर और सुखों से भरपूर है। मानव शरीर प्रभु की सर्वश्रेष्ठ रचना है। जो दक्षतादि की सहायता से अमृतमय, सौख्यपूर्ण रथ पर आरोहण करके बौद्धिक उत्कर्ष को प्राप्त होता है, वही मनुष्य बनता है और उसी को यज्ञ-स्थल एवं धार्मिक सभाओं में उपदेश करने का अधिकार प्राप्त होता है।

जीवन को महान् एवं यशस्वी बनाने के लिए वेद के निम्न आदेश का पालन करें

स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पयस्व, स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा ते अन्येन न संनशे॥

यजुर्वेद: 23.15

हे (वाजिन) वीर मानव! सर्वप्रथम अपने (तन्वम्) शरीर को ब्रह्मचर्य पालन, प्राणायाम एवं योगाभ्यास द्वारा (कल्पयस्व) स्वस्थ एवं बलवान् बनाओ। (स्वयं यजस्व) श्रेष्ठ कर्म करते हुये अपने मन-बुद्धि का विकास करके मेधावी बनो। (स्वयं जुषस्व) साधना करके अपने जीवन को ज्ञान-ज्योति, आत्म-ज्योति तथा ब्रह्मज्योति से जगमगा दो, तभी आपका जीवन महान् एवं यशस्वी बनेगा। तेरी महिमा (अन्येन) किसी दूसरे के द्वारा (न सम् नशे) संसिद्ध नहीं हो सकती।

जीवन को महान् एवं यशस्वी बनाने के लिए वेद प्रत्येक मानव को निम्न छः क्षमताओं को धारण करने की शिक्षा दे रहा है।

मयि त्यदं इन्द्रियं बृहत मयि दक्षो मयि कृतुः।
धर्मस्य त्रिशुग विराजति, विराजा ज्योतिषा सह, ब्रह्मणा तेजसा सह॥

यजुर्वेद: 38.27

मन्त्रार्थ-(मयि विराजति) मुझ से विराज रहा है, जगमगा रहा है (त्यद बृहत् इन्द्रियम) वह महान् इन्द्रियाचार-चरित्र, (मयि दक्षः) मुझमें दक्षता, कार्य-कुशलता, (मयि क्रतुः) मुझ में क्रतु, कर्म करने की शक्ति, (मयि त्रि शुक धर्मः) मुझ में त्रिकांत धर्म, (विराजा ज्योतिषा सह) मैं हूँ विराट्, ज्योति से सहित, (ब्रह्मणा तेजसा सह) मैं हूँ-ब्रह्म-तेज से युक्त।

(1) **महान चरित्र** व्यक्ति को महान् बनाता है, उसे न राज्य महान् बनाता है, न धन बनाता है, और न विद्या बनाती है। महान् चरित्र ही मनुष्य को महान बनाता है।

सदैव स्मरण रक्खें:

वैदिक संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है-'चरित्र की पूजा।' हम चाहे कितनी ही ऊँची से ऊँची उपाधियाँ प्राप्त

कर लें, कितनी ही कार-कोठी, भूमि, कारखानों व सम्पत्ति के स्वामी बन जायें, कितने ही बड़े नेता, अभिनेता, मंत्री, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति बन जायें, यदि चरित्र ऊँचा नहीं है तो इज्जत दो कौड़ी की भी नहीं होगी।

चरित्र को महान् बनाने के लिए सर्वप्रथम विचारों की पवित्रता की आवश्यकता है। जैसे विचार वैसा संसार। जो जैसा चिंतन करता है वह वैसा ही बन जाता है। विचारों की पवित्रता के लिए भद्रदर्शन एवं भद्रश्रवण तथा वैदिक संस्कृति के अनुरूप शिक्षा अनिवार्य है। आज दूरदर्शन (दुष्टदर्शन) एवं सिनेमा द्वारा सर्वाधिक चरित्र का विनाश किया जा रहा है।

चरित्र को महान् बनाने के साथ वैदिक मर्यादाओं का पालन करना आवश्यक है। (1) शराब न पीना (2) मांस न खाना (3) जुआ न खेलना (4) व्यभिचार न करना (5) झूठ न बोलना (6) चोरी न करना (7) कटु वचन न बोलना।

(2-3) **मेरे अंदर दक्षता-कर्म कुशलता है:** जो भी काम करो पूर्ण दक्षता एवं कुशलता पूर्वक करो- **'योगः कर्मसु कौशलम्'** (गीता)।

निम्न वेद मंत्र में 100 वर्ष तक श्रेष्ठ कर्म करते हुए जीवित रहने का आदेश है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

यजुर्वेद: 40.2

इच्छा कर सौ वर्ष आयु की, करता हुआ कर्म सविवेक।
यों कर्मों से लिप्त न होगा, यही मार्ग है उत्तम एक।।

(4) **मेरे अंदर त्रि-शुग धर्म:** जिनके हृदय में समाज, राष्ट्र एवं विश्वकल्याण की भावनायें होती हैं, वही मानव सुयश को प्राप्त करते हैं।

(5) मेरी आत्मा में विवेक ज्योति है (विराजा ज्योतिषा सह):
जो व्यक्ति योग-साधना एवं वेदाध्ययन द्वारा अपनी विवेक-ज्योति से ज्योतिष्मान हो जाते हैं। उनका अज्ञान, भ्रम, भ्रान्ति, विकार, वासना सब समाप्त हो जाते हैं। उन्हें ऋत एवं सत्य का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

(6) मेरे अंदर ब्रह्म तेज है (ब्रह्मणा तेजसा सह):
'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति। (गीता)

ईश्वर समस्त प्राणियों के हृदय में बैठा हुआ है। अपनी आत्मा को ब्रह्म से युक्त करके ब्रह्म के गुणों को धारण करें। योग-जीवन-पद्धति पर चलकर शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक एवं सामाजिक उन्नति को प्राप्त करके ऐश्वर्यशाली, पराक्रमी, शक्तिशाली, दानी एवं ब्रह्मज्ञानी बनें।

विश्वास रखिये-

आपके भीतर वे समस्त योग्यताएँ एवं क्षमताएँ सन्निहित हैं, जो संसार के किसी भी महान् से महान् व्यक्ति के जीवन में निहित थीं। आवश्यकता है दृढ़ संकल्प एवं आत्मविश्वास के साथ उन्हें अपने आचरण में लाने की। मनुष्य स्वयं अपने ही महान् कार्यों, सुकर्मों, श्रेष्ठ आचार-विचारों, उच्च-भावनाओं एवं सदाचार से ही महा-मानव एवं यशस्वी बनता है। अतः आज ही संकल्प करें:- **'यशश्च मे यज्ञेन कल्पनताम्**-हे प्रभो! मेरा यश श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा संसार में फैले। *-कृष्णऔतार, बढ़ापुर*

'जीवन मुक्त'

जिसकी आँख में है स्नेह-जिसका शुद्ध उज्जवल भाल।
जिसके अधर पर मुस्कान-जिसका हृदय सिंधु विशाल।
सुंदर स्वस्थ प्रतिभावान-जिसके हैं महान विचार
जिसके कर्म गौरवपूर्ण-जिसका विश्व है परिवार।
जो कर्त्तव्य तत्पर नित्य-है तप तेज बल श्री युक्त
सेवा सत्य सुख का रूप-वह नर श्रेष्ठ जीवन मुक्त।।

पाप-अपराध व बुराइयों से कैसे बचें?

ओ३म् भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा! भद्रं पश्येमाक्षभिरयजत्राः।
स्थिरैरङ्गस्तुष्टुवां सस्तनूभिर व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।

यजुर्वेदः 25.11

हे देव! कानों से सदा ही भद्र हम सुनते रहें।
भद्र आँखों से देखें, सुकर्म अंगों से सदा करते रहें।।

सुनना और देखना ही शिक्षा का मूल है। नवजात शिशु सर्वप्रथम कानों से सुनता है। फिर देखने की चेष्टा करता है, और जैसा सुनता व देखता रहता है। वैसा ही उसका जीवन बन जाता है। मनुष्य जैसा सुनता और देखता है, वैसे ही उसके विचार और संस्कार बनते हैं। विचार तथा संस्कार के अनुसार ही उसके कर्म होते हैं, और कर्मानुसार ही फल प्राप्त होता है।

भद्र श्रवण एवं भद्रदर्शन से आचार-विचार-व्यवहार व आहार की शुद्धि होकर शरीर बल और आत्मबल की वृद्धि होती है तथा उसका चरित्र उत्कृष्ट और जीवन महान् बनता है। चरित्र-निर्माण का यही मूलमंत्र है।

अभद्र श्रवण और अभद्र दर्शन से ही पाप, अपराध व बुराइयाँ आकर चरित्र को भ्रष्ट और जीवन को नष्ट कर देती हैं। मंत्र के उत्तर पाद में कहा है कि भद्र सुनते-देखते हुए हम सुदृढ़ इन्द्रियों तथा शरीरों से स्तुत्य, प्रशंसनीय बनकर लोकोपकारी कार्यों को करने में समर्थ होवें।

परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व को सदाचारी और सुमहान् बनाने के लिए भद्रश्रवण और भद्रदर्शन की सार्वभौम व्यवस्था

की जानी चाहिए। तभी संसार से पाप-अपराध-भ्रष्टाचार-आंतकवाद एवं बुराइयों का अंत हो सकेगा।

आज दूरदर्शन व सिनेमा तथा अश्लील पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अभद्र श्रवण व अभद्र दर्शन के द्वारा संसार के समस्त मानवों के मन-मस्तिष्क को दूषित बनाया जा रहा है। जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण विश्व पाप, अपराध व बुराइयों का घर (नर्कधाम) बन गया है। शासक वर्ग इस सच्चाई को समझें तथा दूरदर्शन व सिनेमा को सुदर्शन व सुश्रवण में बदल दें, तभी संसार स्वर्गधाम बन सकेगा।

अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति श्री क्लिंटन की पत्नी ने अपनी पुस्तक 'इट टेक्स ए विलेज' में लिखा है—"अमेरिका में हर चौथा बच्चा अविवाहित माँ का बच्चा होता है" पुस्तक में श्रीमती क्लिंटन बताती है कि टेलिविजन किस तरह बच्चों का दिमाग प्रदूषित करता है। वे कहती हैं कि टेलिविजन अमेरिकी समाज की गिरावट का सबसे बड़ा कारण है। इसी के कारण परिवार, स्कूल और चर्च जैसी संस्थाओं में गिरावट आयी है। जब तक टेलीविजन है, तब तक कोई सुधार नहीं हो सकता।

पाप का निराकरण

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षा वनानि संचर गृहेषु गोषु में मनः॥

अथर्ववेद: 6.45.1

ओर मेरे मन के पाप! परे-दूर चला जा, क्यों तू बुरी-बुरी सलाह दे रहा है। चल यहाँ से भाग जा, मैं तुझे नहीं चाहता हूँ। वृक्षों और वनों में चला जा। मेरा मन गृहोपयोगी कार्यों और गौसेवा में लगा है।

पाप के लिए मंत्र में मनः पाप (मनस्पाप) शब्द का प्रयोग हुआ है, जो एक मनोवैज्ञानिक रहस्य का उद्घाटन कर रहा है।

पाप का अधिष्ठान 'मन' है–शरीर नहीं। बुराई जब तक मन में रहती है, तब तक वह 'पाप' कहलाती है और मन में आई बुराई जब कर्मेन्द्रियों द्वारा क्रिया रूप में परिणत हो जाती है, तब वह अपराधी हो जाती है। किसी भी प्रकार का अपराध होने से पूर्व उसका विचार मन में आता है। पाप ही अपराध का जनक है। किसी के मन में क्या पाप है, इसका ज्ञान किसी अन्य को नहीं हो सकता है। संसार भर के दण्ड विधानों में अपराध ही दण्डनीय है–पाप नहीं। पाप का दण्ड केवल ईश्वर देता है, क्योंकि वह सर्वव्यापक होने से हमारे हृदयों मे बैठा हुआ हमारे गुप्त से गुप्त विचारों को भी जान रहा है, देख रहा है। **'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति'** (गीता)।

अतः पाप के निराकरण से ही अपराध का निर्मूलन होगा। समस्त पापों का मूल है–**नास्तिकता** अर्थात् ईश्वर की सत्ता में विश्वास न करना और उसकी वेदोक्त आज्ञाओं व शिक्षाओं को न मानना। यदि हमें ईश्वर की सत्ता पर विश्वास हो, निष्ठा हो तथा उसकी न्यायकारिता, कर्मफल प्रदातृता पर विश्वास हो, तो पाप हो ही नहीं सकता।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत!

यजुर्वेदः 40.1

जो कुछ है सम्पूर्ण जगत् में, सब में परमेश्वर है व्याप्त।

स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु

यजुर्वेदः 32.8

वह ईश्वर सभी प्रजाओं प्राणियों में ताने–बाने के समान ओत–प्रोत है। सर्वशक्तिमान, ईश्वर समस्त प्राणियों को उत्पन्न करके सबमें व्यापक होकर अन्तर्यामी रूप से बसके पाप–पुण्यों को देखता हुआ पक्षपात छोड़कर सत्य–न्याय से सबको यथावत् फल दे रहा है। ऐसा निश्चित जान के ईश्वर से भय करके सब मनुष्यों को उचित है कि मन–वचन व कर्म से पाप–कर्मो को कभी न करें। गीतांजलि में श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर कहते हैं– **'हे ईश्वर!**

यह शरीर तेरा मन्दिर है, अतः मैं इसे हमेशा पवित्र रखूंगा। आपने मुझे यह हृदय दिया है, इसे मैं आपके प्रेम से भर दूंगा। आपने मुझे यह बुद्धि दी है, इस बुद्धि रूपी दीपक को मैं हमेशा निर्मल एवं तेजस्वी रखूंगा।

मन क्या है? मन आत्मा का साधन है। मन के द्वारा ही आत्मा की इच्छित क्रियाएँ होती हैं। आत्मा का मन, मन का इन्द्रियों से और इन्द्रियों का विषयों से सम्पर्क होने पर ही आत्मा को ज्ञान तथा उसकी इच्छित क्रियाएँ होती हैं।

यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते, तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।

यजुर्वेदः 34.3

जिसके बिना कुछ काम न होता, दुर्गुण तजनेवाला हो।
हे परमेश्वर! मेरा मन वह, शुभ संकल्पों वाला हो।।

हमारे जीवन की प्रत्येक गति और चेष्टा (कर्म) मन के द्वारा ही होती है। मन के निर्देश के बिना कोई भी काम नहीं किया जा सकता है। आत्मा के जीवन व्यापार में सब कुछ कर्त्ता-धर्त्ता यह मन ही है। अतः मन की साधना सर्वोपरि है।

मन साधे-इन्द्रियाँ सधें, सधे सकल व्यवहार।
मन बिगड़े बिगड़े सभी, बिगड़े इन्द्रिय व्यापार।

मन की साधना व उसे शिव-संकल्पी बनाने के लिए हमें ईश्वर की सहायता लेनी होगी।

ओं त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः।
त्वमस्माकं तव स्मसि।।

ऋग्वेदः 8.92.32

हे ईश्वर! तुझसे ही संयुक्त होकर हम शत्रुओं को उत्तर दें अर्थात् उन पर विजय प्राप्त करें। तू हमारा है, तेरे हम हैं।

बिना ईश्वर की सहायता के हम सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। प्रत्येक मानव को अपने जीवन में दो प्रकार के शत्रुओं का सामना करना पड़ता है। प्रथम बाहरी शत्रु और दूसरे भीतरी।

हम बाहरी शत्रुओं का मुकाबला तो बाहरी सहायता से कर लेते हैं, परंतु भीतरी शत्रुओं–काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष आदि जो एक–एक भी अत्यन्त बलवान् है–से मुकाबला करना अत्यन्त कठिन है। इन पर विजय प्राप्त करने का केवल एक ही रास्ता है ईश्वर की सहायता लेना। ईश्वर की सहायता प्राप्त होती है वैदिक रीति से, ईश्वर उपासना एवं अष्टांग योग–जीवन पद्धति पर चलने से।

वेद परमात्मा द्वारा प्रदत्त सृष्टि का संविधान है। यह संसार क्या है? हम कौन हैं? इस संसार में कैसे रहें? हमारे क्या–क्या कर्तव्य हैं? हमारा ईश्वर के साथ क्या सम्बन्ध है? हम ईश्वर की उपासना क्यों व कैसे करें? इत्यादि सभी बातों का समाधान वेदों के स्वाध्याय से मिलेगा। पाप–अपराध व बुराइयों से बचने के लिए वेदों में सात वैदिक मर्यादाओं का पालन करने और छः भीतरी शत्रुओं (पाशविक वृत्तियों) को नष्ट करने का उपदेश दिया है।

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यं हुरो गात।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीले पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ॥

ऋग्वेदः 10.5.6

इस मंत्र में प्रत्येक मानव को सात मर्यादाओं के पालन का आदेश दिया गया है। इनमें से एक का भी उल्लंघन करने वाला पापी होता है। और पापी को जीवन में सुख नहीं मिलता। सात मर्यादाएँ इस प्रकार हैं (1) शराब न पीना (2) मांस न खाना (3) जुआ न खेलना (4) व्यभिचार न करना (5) झूठ न बोलना (6) चोरी न करना (7) कटु वचन न बोलना।

निम्न वेद मंत्र में 6 भीतरी शत्रुओं को नष्ट करने का उपदेश दिया है।

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमत् गृध्रयातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र॥

अथर्ववेदः 8.4.22

हे (इन्द्र) इन्द्रियों के स्वामी प्रिय आत्मन्। (1) उलूक (उल्लू) वृत्ति–(दूसरों का अनिष्ट चाहना और अज्ञान प्रिय होना) (2) शुशुलूक (भेड़िया) वृत्ति–(क्रोध व हिंसा) (3) श्वान (कुत्ता) वृत्ति–(स्वजाति द्रोह, टुकड़े के लिए दुम हिलाने व खुशामद करना) (4) कोक (चिड़ा) वृत्ति–(कामी-लम्पट-परस्त्रीगामी होना(5) सुपर्ण (बाज) वृत्ति–(अभिमानी व पर उत्पीड़क होना) तथा (6) गृध (गीध) वृत्ति–(अति लालची और असंतोषी होना, इन सभी पाशविक कुवृत्तियों को पत्थर जैसे कठोर साधनों–अर्थात् योग- साधना द्वारा नष्ट कर दे।

ओ३म्! इमं यवमष्टायोगैः षडयोगेभिरचर्कृषुः।
तेना ते तन्वो रपोऽपाचीनम अपव्यये॥

अथर्ववेद: 6.61.1

सब मनुष्यों को योग्य है कि आठ अंगों वाले अष्टांग योग और छः अंगों वाले (षडांगयोग) का अभ्यास नियमित रूप से करते हुए–ईश्वर, जीव व प्रकृति तीनों का साक्षात्कार करके अपने मानव जीवन को सफल बनावें। महर्षि पतंजलि के अनुसार योग के आठ अंग इस प्रकार हैं: यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि।

1. यम–यम पाँच हैं–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह–ये पाँच यम सामाजिक नियम हैं, जो जाति, देश, काल ओर समय की सीमा से रहित–सार्वभौम–सब अवस्थाओं में पालन किये जाने वाले महाव्रत माने गये हैं। यदि संसार के सभी स्त्री-पुरुष इन महाव्रतों का पालन करें तो आधुनिक विश्व के समस्त पाप-अपराध, बुराइयाँ, कष्ट, क्लेश, दुःख व आपत्तियों का अन्त होकर संसार स्वर्गधाम बन जायेगा।

2. नियम–नियम भी पाँच हैं–शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान ये पाँचों व्यक्तिगत नियम हैं। इनका पालन करने से मानव दिव्य गुणी मानव बन जायेगा। महर्षि पतंजलि की यह

एक अनुपम खोज है। अष्टांग योग के द्वारा मानव व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास अर्थात् शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक एवं सामाजिक उन्नति-विकास होकर ब्रह्म-साक्षात्कार होकर-साधक जीवन मुक्त हो जाता है।

अंत में यही प्रार्थना है:

ऐसा वर दो देव दिवाकर, जीवन बने सत्य शिव सुन्दर।
निर्विकार आँखों से देखूँ, सौ वर्षों पर्यन्त स्नेह से।
सरल सरस सत् वाणी बोलूँ, कर्म करूँ सौ वर्ष देह से।
सुनुँ सत्य सौ वर्ष निरन्तर, ऐसा वर दो देव दिवाकर।।
कभी दीनता आ न सके, मेरे दैदीप्त दीर्घ जीवन में।
वाणी में बल, तेज आँख में, और सजगता रहे श्रवण में
उमड़े सहज सुधा का निरझर, ऐसा वर दो देव दिवाकर।।
जीवन बने सत्य-शिव-सुन्दर।।

–कृष्णऔतार, बढ़ापुर

पढ़ो अमर-ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश

सभी समस्याओं का तुम जो समाधान पाना चाहो,
पढ़ो महर्षि दयानन्द का अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश
वेद शास्त्र का सार है इसमें, धर्म-कर्म-व्यवहार है इसमें,
निराकार ईश्वर की पूजा, भक्तिभाव और प्यार है इसमें।
ये है ऐसा बिगुल कि जिसमें गूंज उठे धरती-आकाश।।
पढ़ो अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश।।
दम्भ के परदे फट जाते हैं, वहम के बादल हट जाते हैं,
मन-बुद्धि रोशन हो जाते हैं, दूर अँधेरे छँट जाते हैं।
सभी अंध-विश्वासों और पाखण्डों का हो सत्यानाश
पढ़ो महर्षि दयानन्द का अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश।।

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

यह मानव शरीर एक रथ है, जिसमें बैठकर आत्मा इस संसार की लीला देखता है, यात्रा करता है, विभिन्न प्रकार के कर्मों को करके सुख-दुःख भोगता है, नाना प्रकार की खोज व रचनायें करता है। इस रथ में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ रूपी घोड़े जुते हैं, तथा मन इस रथ का सारथी (संचालक) है

यात्रा सकुशल तभी पूरी होगी, जब रथ का सारथी कुशल, बुद्धिमान्, मार्ग-ज्ञान सम्पन्न हो, रथ में जुड़े अश्व सुनियन्त्रित, सधे हुए और इशारे पर चलने वाले हों, रासें और सज्जायें सुन्दर और सुदृढ़ हों, रथ सम्यक् कसा हुआ, स्वस्थ हो तथा मार्ग सम और सुतर हो।

मन क्या है: सुख-दुःख आदि आन्तरिक भावों को अनुभव करने वाली इन्द्रिय मन है। ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, नाक, कान, त्वचा और जिह्वा मन के सहारे ही ज्ञान प्राप्त करती हैं तथा कर्मेन्द्रियों (हाथ, पैर मुँह, गुदा और उपस्थ) तक संदेश भेजकर उनसे काम करवाना भी इसी मन का काम है।

आत्मा अभौतिक है, शरीर भौतिक है। इन दोनों के मेल का काम मन के द्वारा होता है, जो भौतिक होते हुए भी अभौतिक सम है। आत्मा से प्राप्त संदेशों के अनुसार मन संकल्प करता है। एक ओर मस्तिष्क-बुद्धि को संकल्पित विषय के चिंतन के लिए प्रवृत्त करता है और दूसरी ओर संकल्पित विषय के क्रियान्वयार्थ कर्मेन्द्रियों को प्रवृत्त करता है। मन के संकल्पों से संकल्पित होकर ही सम्पूर्ण जीवन संचालित हो रहा है।

जीवन साम्राज्य में मन की साधना सर्वोपरि है। सिद्ध मन ही

चित्त की वृत्तियों का निरोध करके, इन्द्रियों को वश में रखकर आत्मा के जीवन-साम्राज्य का शिव संचालन कर सकता है। सभी कार्यों का मूलाधार मन है। इसके बिना कोई भी काम नहीं चल सकता। अतः जब हमारा मन शुद्ध, पवित्र, दृढ़ निश्चयी और शुभ-संकल्पों वाला होगा, तभी हमारा शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं आत्मिक विकास होकर ब्रह्म-साक्षात्कार भी हो सकेगा। इसके लिए यजुर्वेद में अत्यन्त सुन्दर शब्दों में शिव-संकल्पवान् होने का उपदेश दिया गया है।

ओं यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिसंकल्पमस्तु।

यजुर्वेद: 34.1

हे ईश्वर! जाग्रत मन मेरा, दूर-दूर तक जाता है।
वही सुषुप्तावस्था में भी, दूर-दूर हो आता है।।
सब अंगों का वही प्रकाशक, स्वस्थ और सुखवाला हो।
हे परमेश्वर! मेरा मन वह, शुभ-संकल्पों वाला हो।।

दिव्य मनः

मन ज्योतियों की ज्योति है। निर्मल मन ही ज्ञानों का प्रकाशन और विज्ञानों का आविष्कार करता है।

मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो

मन ही मनुष्यों के बंधन ओर मोक्ष का कारण है। निर्मल मन उन ज्ञान-ज्योतियों का प्रकाशन करता है, जो जीवन-पथ के अंधकारों को नष्ट करके मोक्ष तक पहुँचा देती हैं। मलिन मन वह अंधकार है, जो मानव को भटका कर माया (भोगों) की कठोर जंजीरों में जकड़ देता है।

आहार से भी मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आहार से ही शरीर का सत्व बनता है- **"आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि।"** कहा भी है- **"जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन।"** शुद्ध पवित्र कमाई के सात्विक

आहार में ही शुद्ध सत्य शिव-संकल्पों का निवास होता है।

संकल्प का अर्थ है प्रबल तथा साधिकार इच्छा। शिव-संकल्प का अर्थ हुआ शुभ, प्रबल तथा साधिकार इच्छा। संकल्प शक्ति को दृढ़ बनाकर मनुष्य संसार के महान् कार्यों में सफलता प्राप्त कर सकता है। संकल्प शक्ति को दृढ़ एवं कल्याणकारी बनाने के लिए योगाभ्यास की रीति से ईश्वर उपासना आवश्यक है। "Will Power is next to God Power महात्मा बुद्ध, शंकराचार्य और दयानन्द ने इसी दृढ़ संकल्प शक्ति के बल पर संसार को सन्मार्ग दर्शन कराया।

ओं येन कर्माण्यसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यद्पूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।

यजुर्वेदः 34.2

धीर मनीषी धर्मनिष्ठ जन, यज्ञों को जिससे करते।
ज्ञान और विज्ञान सहित वे, शुभ कर्मों को ही करते।।
हर प्राणी के उर में रहता, अद्‌भुत गुण बलवाला हो।
हे परमेश्वर! मेरा मन वह, शुभ संकल्पों वाला हो।।

यक्षमनः

यक्ष-पूज्य और अध्यक्ष। इस मंत्र में प्रजा शब्द का प्रयोग इन्द्रियों के लिए हुआ है। शुद्ध, पवित्र इन्द्रियाँ मन की प्रजायें हैं और मन उनका पूज्य अध्यक्ष। शिव संकल्पों से युक्त होकर ही मन यक्ष बनता है, और यक्ष मन की इन्द्रियाँ ही, प्रकृष्ट शुद्ध बन जाती हैं।

ओं यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते, तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

यजुर्वेदः 34.3

उत्तम ज्ञानों का साधन जो, धीर स्वरूपी होता है।
ज्योतिमान जो नाशरहित है, हर मानव में होता है।।

जिसके बिना कुछ काम न होता, दुर्गुण तजने वाला हो।
हे परमेश्वर! मेरा मन वह, शुभ संकल्पों वाला हो।

प्रज्ञान मनः

हमारे जीवन की प्रत्येक गति और चेष्टा मन के द्वारा ही होती है। मन के निर्देश के बिना कोई भी काम नहीं किया जा सकता।

ओं येनेदम्भूतं भुवनं परिगृहीतमममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

यजुर्वेदः 34.4

हे अविनाशी! संग आपके तीन काल का ज्ञान करे।
जिसके बल होता गण सातों, यज्ञ-कर्म-व्यवहार करें।।
ज्ञान और विज्ञान बढ़ावे, मोक्ष रूप सुखवाला हो।
हे परमेश्वर! मेरा मन वह, शुभ संकल्पों वाला हो।।

अमृत मनः

शिव संकल्पयुक्त मन वह अमृत है, जो मानव जीवन को अमृतमय बना देता है।

जीवित मन (अमृतमन) भूत की भूलों का निराकरण करके वर्तमान को सफल और भविष्य को सुफल बना देता है। जीवित मन अतीत के गौरव और वैभव को वर्तमान में प्रतिष्ठित करके भविष्य को समुज्ज्वल कर देता है। जीवित मन भूत में खोये ज्ञान-विज्ञानों को पुनः आविष्कृत करके भविष्य को ज्ञान-विज्ञान के विकास की सम्भावनाओं से सम्भावित बना देता है। जीवित मन भूत के संचित कर्मफलों, विकार-वासनाओं तथा मलों को वर्तमान की साधना द्वारा धोकर भावी को मोक्षप्रद तथा आनन्दप्रद बना देता है। भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल अमृत मन के आश्रित हैं।

होता का अर्थ है—यज्ञ सम्पादक। वैदिक ऋषियों ने हमारे इस

शरीर को सप्त ऋषियों का आश्रम कहा है—सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे' (यजु)। ऋषिगण ज्ञान लिया व दिया करते हैं। हमारे मस्तक में दो आँखें, दो कान, दो नासापुट तथा एक मुख ये सात ऋषि हैं। ये सभी ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं तथा आत्मा को ज्ञान दे रहे हैं। इनका यह ज्ञान व्यवहार आजीवन जारी रहता है। यदि वे संयमी हुए तो देव व ऋषि बन जाते हैं, मानव को दिव्य मानव बना देते हैं, किन्तु यदि ये भोगी हो गये तो मानव को राक्षस वा असुर बना देते हैं। अमृत मन से ही सप्तहोताओं द्वारा जीवन यज्ञ का संचालन हो रहा है।

ओं यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

यजुर्वेद: 34.5

ई ईश्वर! रथ पहियों में ज्यों, अरे लगाये रहते हैं।
वैसे ही मानव-मन चारों वेद समाये रहते हैं॥
सकल जगत का ज्ञान समाये, सुन्दर चिंतन वाला हो।
हे परमेश्वर! मेरा मन वह, शुभ संकल्पों वाला हो।

मन सम्पूर्ण ज्ञान का प्रतिष्ठाता है। मन आत्मा का निकटतम है। मन आत्मा की चेतना और शक्ति से प्रचेतित और सशक्त है। आत्म समाहित होकर जब मन शुद्ध और शिव बन जाता है, तब साधक की समस्त ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, समस्त आवरण अनावृत हो जाते हैं। आत्मा-आत्म-अवस्थित होकर ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त हो जाता है। ब्राह्मी-स्थिति में स्थित हो जाने पर वेदों की ऋचायें साधक के मन में अपने रहस्यों का प्रस्फुटन करती हैं।

मन ही प्रजाओं (ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों) का प्रचेता है। इन्द्रियाँ मन की प्रजा हैं। मन शिव हो और साथ ही इन्द्रियाँ भी निर्मल, नियंत्रित और प्रचेतित हों, तब ही मन वेदमंत्रों के रहस्यों का ज्ञाता और प्रकाशक बन जाता है। ज्ञान-कर्म-उपासना का आधार मन है।

ओं सुषारथिरश्यानिव यन्मनुष्यान् नेनीयतेऽसीशुभिर्वाजिनऽइव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।

यजुर्वेद: 34.6

चतुर सारथी ज्यों अश्वों को वश कर शीघ्र चलाता है।
वैसे ही यह मन मानव को, अपने वश कर पाता है।।
जविष्ठ और अजिर उर रहता, सर्वोत्तम बलवाला हो।
हे परमेश्वर! मेरा मन वह, शुभ संकल्पों वाला हो।।

सुसारथी मनः

शिव संकल्पों से संकल्पित मन मनुष्य को उसी प्रकार कुशलतपूर्वक लक्ष्य की ओर ले जाता है, जिस प्रकार एक सुसारथी रासों से अश्वों को प्रेरित करता हुआ रथ और रथी (स्वामी) दोनों को अभीष्ट की प्राप्ति करा देता है।

मन शिव संकल्पी कैसे बने:

मन बहुत चंचल हैं, इसे वश में करना सरल नहीं है। यही प्रश्न धनुर्धारी अर्जुन ने योगेश्वर श्रीकृष्ण से पूछा था:

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़म्।
तस्यांह निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम।।

गीता: 6. 34

हे कृष्ण! मन चंचल हठी बलवान है दृढ़ है घना।
मन साधना दुष्कर दिखे, जैसे हवा का बांधना।।

श्री कृष्ण बोले–

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते।।

गीता: 6.35

चंचल असंशय मन महाबाहो! कठिन साधन घना।
अभ्यास और विराग से पर पार्थ! होती साधना।।

किसी सुयोग्य योगाचार्य के निर्देशन में श्रद्धार्वूक नियमित अष्टांग योग साधना करने स्वाध्याय, सत्संग एवं वैराग्य भावना बनाये रखने से मन वश में आकर शिव संकल्पी बन जायेगा।

मन को शिवसंकल्पी बनाने के लिए दूसरा महत्वपूर्ण साधन है आहार की शुद्धि। कहावत प्रसिद्ध है–'जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन।' चेतना का प्रमुख केन्द्र मन अन्न के आधार पर चलता है।

आहार शुद्धौ सत्वशुद्धि। सत्त्व शुद्धौ। ध्रुवा स्मृतिः॥

महर्षि कणाद ने कहा है– **'तद्दुष्टे न विद्यते'** दुष्ट अथवा दूषित अन्न से शुद्ध मन नहीं बन सकता। अतः मन को शिव संकल्पी बनाने के लिए पवित्र नेक कमाई से प्राप्त धन से सात्विक शुद्ध आहार करना आवश्यक है।

–कृष्णऔतार, बढ़ापुर

प्राणायाम से लाभ

प्राणायाम करके जो, ध्यान भी लगायेगा, जीवन में आयु दीर्घ वही नर पायेगा।
प्राण का आधार शुद्ध अन्न ही तो होता है, शुद्ध अन्न-वायु से ही प्राण पुष्ट होता है।
शुद्ध जल-वायु-अन्न को जो नित खायेगा, जीवन में आयु दीर्घ वही नर पायेगा।–1
अन्तः बाह्य श्वास पर पूर्ण ध्यान धरता है, प्राण को प्रणाम कर प्राणायाम करता है।
श्वास की प्रणाली स्वस्थ सबल बनायेगा, जीवन में आयु दीर्घ वही नर पायेगा।–2
कुम्भ में अचल जल, जैसे ठहरा होता है, प्राण भी अचल होके, वैसे ठहरा रहता है।
प्राणायाम कुम्भक से ऊर्जा जो बढ़ायेगा, जीवन में आयु दीर्घ वही नर पायेगा।–3
प्राणायाम अन्तः बाह्य रोक नहीं पाता है, प्राण गति तीव्र होके आयु वह गँवाता है।
'दिव्य' प्राण-मन-बुद्धि शान्त रख पायेगा, जीवन में आयु दीर्घ वही नर पायेगा।–4

(स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती)

नोट–वेद मंत्रों का पद्यानुवाद लेखक ने 'वैदिक उपासना विधि' डॉ॰ वेदप्रकाश, मेरठ से साभार लिया है।

दिव्य-जीवन

दैवी नौका में बैठ हम दिव्य जीवन जिएँ

वैदिक विचारधारा का लोप हो जाने के कारण गत दो सहस्र वर्ष से अनेक धर्माचार्य एवं धर्म प्रचारक इस जगत को मिथ्या क्षणभंगुर दुःखों का सागर वृहत् कारागार बताते रहे हैं। ऐसे लोगों के अनुसार यह शरीर मलमूत्र का गड्ढा,अमंगलकारी, कष्टों का कारण है। इसकी उत्पत्ति पाप से हुई है। इसमें रहते दीन-हीन व पापपूर्ण जीवन को व्यतीत किया जा सकता है। इन आत्मघाती कुविचारों का ही परिणाम है कि आर्य जाति पतन के गर्त में पड़ी हुई है।

ऐसी अवैदिक विचारधारा का ही परिणाम था कि सृष्टि की ब्रह्मचारी-**स्त्री हि ब्रह्म बभूविथ** (ऋ०: 8.33.19) को नरक का द्वार अधम व ताड़न का अधिकारी धर्माचार्यों व सन्त कवियों द्वारा घोषित किया गया। मानव की जन्मदात्री, निर्माणकर्त्री एवं प्रथम आचार्या को वेद पढ़ने के अधिकार से भी वंचित कर दिया गया।

इन आत्मघाती कुविचारों का ही परिणाम है कि आज आर्य जाति पतन के गर्त में पड़ी हुई है। ऐसे कुविचारों को त्याग, उदात्त वैदिक विचारों को धारण कर, उनके अनुसार आचरण कर हम इस संसार में दिव्य व सुखी जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

इसके विपरीत वेदानुयायी प्राचीन भारतीय मानव शरीर को सम्पूर्ण सृष्टि में परमेश्वर की सर्वोत्तम रचना और समस्त सम्पत्तियों से भी अधिक मूल्यवान मानते थे वे कामना करते थे कि सौ से भी अधिक वर्षों तक सुखी और स्वस्थ जीवन व्यतीत करें। निश्चय

ही कोई भी व्यक्ति किसी शौच कूप में अधिक देर रहने की इच्छा नहीं करेगा। ऐसी कामना तो किसी ऋषि आश्रम व देव मन्दिर में रहने की ही होगी।

वैदिक ऋषियों ने हमारे इस शरीर को सप्त ऋषियों का आश्रम द्वारका और अयोध्या[1] कहा है। सप्त ऋषि प्रत्येक शरीर में हैं ये सात ऋषि प्रमाद न करते हुए इस यज्ञशाला का रक्षण किया करते हैं। यहाँ पर सात नदियाँ भी हैं, वे सोते समय सोने वाले के स्थान की ओर बहा करती हैं और जागते समय बाहर की ओर बहा करती हैं। यहाँ दो देव निरंतर जागकर इस आश्रम की रक्षा किया करते हैं।

ऋषिलोग ज्ञान लिया और दिया करते हैं। यहाँ मस्तक में दो आँखें, दो कान, दो नासापुट तथा एक मुख ये सात ऋषि हैं। ये सभी ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं तथा आत्मा को ज्ञान दे रहे हैं। इनका यह ज्ञान व्यवहार आजीवन जारी रहता है। यदि ये संयमी हुए तो देव व ऋषि बन जाते हैं, मनुष्य को दिव्य मानव बना देते हैं, किन्तु यदि ये भोगी हो गये तो मानव को राक्षस व असुर बना देते हैं।

आठ चक्रों एवं नौ द्वारों वाली यह देवों की नगरी अयोध्या है।[2] इस देवपुरी के अन्दर एक ज्योति से आवृत हिरण्य कोश के भीतर एक यक्ष (आत्मा) वास करता है, जिसे ब्रह्मविद्! जानते हैं।[3] इस प्रभ्राजमाना, हृदयहारिणी, यशोमयी, अपराजिता, स्वर्णिम देवपुरी में ब्रह्म का वास है। जो नर-नारी ज्ञानी और विवेकी दिव्य गुणों से युक्त हैं, वे ही इस पुरी के नौ द्वारों की सतर्कता के साथ रक्षा करते हैं और योगानुष्ठान द्वारा इसके आठों चक्रों को

1. सप्त ऋष्य: प्रतिहिता: शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्ताप: स्वपतो लोकमीयु: तत्र जाग्रतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ।—यजु०
2. अष्टचक्रा नव द्वारा देवानां पू: अयोध्या। तस्यां हिरण्यय: कोष: स्वर्गो ज्योतिषाऽवृत: ।। 31।।
3. तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते। तस्मिन् यत यक्षम् आत्मवन्त तद्वै ब्रह्मविदो विदु: ।।32।।

सदा जागृत रखते हुए अपने हिरण्य कोश तथा ज्योतिर्मय स्वर्ग को सुरक्षित रखते हैं।[1]

शरीर एक दैवी नावः

हम लोग सुख शान्ति व परमानन्द की प्राप्ति के लिए दैवी नाव पर आरुढ़ हैं। यह नाव अस्रवन्ती है, कहीं से रिसती नहीं सु-अरित्रां इन्द्रिय रूप अच्छे चप्पुओं वाली, सुगठित, कुशलता पूर्वक निर्मित है। सुत्रामांण अच्छी प्रकार रक्षा साधनों से युक्त अदिति-अटूट तथा देवों की जननी है।[2]

ऋग्वेद के अनुसार मैं इन्द्र हूँ मुझे पराजित कर मेरा धन कोई मुझसे छीन नहीं सकता मैं कभी मृत्यु को प्राप्त न होऊँ।[3] दिव्य जीवन बनाने के लिए हमें वेद की निम्न सात मर्यादाओं का दृढ़ता पूर्वक पालन करना होगा। इनमें से एक का भी उल्लंघन करने वाला पापी होता है और पापी को कभी सुख नहीं मिलता।

सात मर्यादायें इस प्रकार हैं-1. शराब न पीना 2. मांस न खाना, हिंसा न करना 3. जुआ न खेलना 4. व्यभिचार न करना 5. झूठ न बोलना 6. चोरी न करना 7. कटु वचन न बोलना।[4]

दिव्य गुणों को धारण करने के लिए परम पिता परमेश्वर ने

---

1. प्रभ्राजमानां हरिणी यशसां सम्परिवृताम्।
   पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजितम्
   ।।33।। अथर्ववेद: 10.2
2. सुत्रमाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
   दैवीं नावं स्वरित्राम नागसम स्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये।।
   ऋग्वेद: 10.63.10
3. अहं इन्द्रो न पराजिग्यं इद्धन न मृत्येव अवतस्थे कदाचनं।
4. सप्त मर्यादा: कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यहुरो गात।
   आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीले पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ।।
   ऋग्वेद: 10.5.06

विश्व के अपने सभी पुत्र व पुत्रियों के लिए स्पष्ट घोषणा की है। योग में कुशल योगाचार्यों का संग करके, उनसे योग की विधि को जानकर ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करें। कोई भी मानव इस संग और ब्रह्मज्ञान के बिना पवित्र होकर सब दिव्य गुणों को प्राप्त नहीं कर सकता।

–कृष्णऔतार, बढ़ापुर

ओं असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतम् गमय।

हम हटें असत् से सत पथ पर बढ़ जायें,
हे प्रभो! अँधेरे से प्रकाश में आयें।
जागृत ज्योतिर्मय सजग बनाकर जीवन,
कर दूर मृत्यु को, अमृतत्व को पायें।।

'वेद' सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। 'वेद' का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम-धर्म है।

महर्षि दयानन्द

वृद्धावस्था कैसे सुखदायी हो?

प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा रहती है कि मैं कभी वृद्ध न होऊँ, सदा युवा बना रहूँ, परन्तु न चाहने पर भी बुढ़ापा अवश्य आता है। किसी कवि ने कहा है–

जो जाकर न आये वो जवानी देखी।
जो आकर न जाये वो बुढ़ापा देखा।।

वृद्धावस्था को सुखदायी बनाने के लिए सर्व प्रथम आप अपने अंदर से वृद्धत्व की भावना को सर्वथा निकाल देवें। जिसके जीवन में उल्लास एवं उमंग है, आनन्द है उत्साह है, मरदानगी और जिन्दा दिली है, वह आयु में वृद्ध होता हुआ भी वास्तव में युवा है। महाभारत काल में द्रोणाचार्य एवं कृपाचार्य ने 100 वर्ष की आयु में बड़ा पराक्रम एवं वीरता दिखाई तथा भीष्म-पितामह ने एक सौ सत्तर वर्ष की आयु में कितने पराक्रम एवं वीरता दिखाई।

प्रकृति का नियम है कि प्रत्येक वस्तु अपनी परिपक्व अवस्था में ही सबसे अधिक आकर्षक, सुगन्धित एवं माधुर्ययुक्त हुआ करती है।

ओं त्र्यम्बंक यजामहे, सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
ऊर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मा अमृतात्।।

ऋग्वेद: 6.58.12

इस वेद मंत्र का सारगर्भित अर्थ है।

स्वाभाविक और उचित मृत्यु वह होती है, जिसमें शरीर आत्मा से इस प्रकार सहज में छूट जाता है, जैसे पका हुआ खरबूजा अपनी अधिक से अधिक पुष्टि को जो उसे बेल से मिल सकती है, पा चुका होता है और पकने पर उसमें एक मधुर सुगन्ध आ जाती है, बेल से अलग हो जाता है।

हमारी मृत्यु भी इस तरह स्वाभाविकता से हो। हम भी ईश्वर की उपासना से योग साधना के द्वारा अपने भीतर परिपक्वता एवं पुष्टि को धारण करके श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा अपनी यशः सुगन्धि को सर्वत्र फैंलायें।

'यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्'

यजुर्वेदः 18.8

हे प्रभो! मेरा यश श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा संसार में फैले।

वृद्धावस्था जीवन की सर्वोच्च और उत्कृष्टतम अवस्था है। जिस प्रकार पूर्णिमा का पूर्ण चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओं से कलान्वित होता है। उसी प्रकार मानव की वृद्धावस्था भी सम्पूर्ण कलाओं से परिपूर्ण होनी चाहिए। शीलता अथवा शान्ति वृद्धावस्था की सबसे बड़ी उपलब्धि है। मस्तिष्क को सदैव शीतल रखते हुए उत्तेजनापूर्ण वातावरण में भी नितान्त शांत एवं सुप्रसन्न रहना वृद्धावस्था की सुशोभन दीप्ति है।

वृद्धावस्था वह अवस्था है, जिसमें चाहे जितने शुभकर्म किये जा सकते हैं। बाल्यावस्था अबोधावस्था है, युवावस्था बोधावस्था, किन्तु वृद्धावस्था परिपक्वता युक्त विवेकावस्था है।

वृद्धावस्था मौत की प्रतीक्षा के लिए नहीं है। मृत्यु को परे धकेलते हुए, योगस्थ रहकर मोक्ष साधनारत और परोपकार रत रहने के लिए है। अपने जीवन के अमूल्य अनुभवों से सबको लाभान्वित करना सबको सही परामर्श देना, सबकी हितकामना करना सबसे प्रिय और मधुर वाणी से बोलना तथा भटकती हुई मानव जाति को सुपथ दर्शाने के लिए है।

प्रत्येक वयोवृद्ध वेद माता के निम्न उपदेश एवं आशीर्वाद को धारण करें और जीवन को सफल बनायें।

'पश्येम नु सूर्यम् उच्चरन्तम्।'

ऋग्वेदः 10.58.4

–कृष्णऔतार, बढ़ापुर

सच्ची शान्ति कैसे प्राप्त करें?

ओं! इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः।।

अर्थववेद: 18.8.3

इयं यत् परमेष्ठिन मनो वा ब्रह्म संशितम्।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः।।

अर्थववेद: 18.8.4

इमानि यानि पंचेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा।
संशितानि यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः।।

अर्थववेद: 18.8.5

पाँच इन्द्रियाँ और छठा मन, ये जो कर्म कर रहे सारे।
हृदय हमारे में ब्रह्मा ने, सूक्ष्म बना इनको जोड़ा रे।।
इनमें से जो जन्म दे रहीं, घोर-कर्म को, मूढ़ भ्रान्ति को।
उन्हीं इन्द्रियों से शुभ कृत्यों द्वारा हम को परम शान्ति हो।।

मनुष्य के अंदर विद्यमान वाणी और मन परमेष्ठी हैं, परम पद पर स्थित हैं, परम शक्तिशाली हैं। पर इनके दुरुपयोग के कारण मानव-मानव का शत्रु बन जाता है, तथा भयंकर परिणाम उत्पन्न हो जाते हैं। मन सहित पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ भी मनुष्य के लिए परमेश्वर की अनुपम देन हैं, इनका भी सम्यक् प्रयोग न करने से घोर परिणाम उत्पन्न हो जाते हैं। उपर्युक्त मंत्रों में परमेश्वर उपदेश व प्रेरणा दे रहे हैं कि इन वाणी, मन तथा इन्द्रियों को हम वेद-ज्ञान से तीक्ष्ण कर लें, जिससे ये पारस्परिक कलह के कारण न बन कर संसार में शांति का साम्राज्य लाने वाले हों।

प्रत्येक व्यक्ति अशान्ति से मुक्त और शान्ति से युक्त रहना चाहता है। संसार के समस्त नर-नारी शान्ति की खोज में लगे हैं, परन्तु सर्वत्र अशान्ति एवं दुःख बढ़ते जा रहे हैं। माता-पिता संतान से तथा संतान माता-पिता से मुख मोड़ रहे हैं। भाई-भाई से बोलना नहीं चाहता। इच्छायें इतनी बढ़ गई हैं कि मनुष्य उनकी पूर्ति करता करता पागल हो रहा है। नारी पर घर-बाहर सर्वत्र अत्याचार हो रहे हैं। आज उसका पूजा का स्थान समाप्त होकर वह केवल भोग-विलास व प्रदर्शन का खिलौना बन गयी है। अधिकांश युवक-युवतियाँ भोगवादी सभ्यता की अग्नि में अपने अमूल्य जीवन को भस्म कर रहे हैं। ईश्वर का नाम लेने के लिए किसी के पास दस मिनट का भी समय नहीं है।

शान्ति क्या है? और कहाँ है? यह जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि अशान्ति क्या है?



अशान्तिः-

चिन्ता और उद्विग्नता के संयोग का नाम है अशान्ति। चिन्ता मनुष्य को जीते जी जलाती है और उद्विग्नता उसे जल-विहीन मीन की तरह छटपटाती है। चिंता मस्तिष्क के संतुलन को नष्ट कर देती है और उद्विग्नता हृदय की समता का विनाश कर देती है।

शान्तिः-

निश्चिन्तता और प्रसन्नता के संयोग का नाम है। शान्ति। जब मस्तिष्क में किसी प्रकार की चिंता नहीं होती तो मनुष्य का हृदय कमल स्वयमेव खिलता है। चिंता और उद्विग्नता का निर्मूलन हो जाये तो अनायास ही शान्ति की उपलब्धि हो जाये।

चिंता और उद्विग्नता की उत्पत्ति होती है इन्द्रियों के अनुशासन हीन, अयोग्य व्यवहार से। इन्द्रियों के अनुशासन हीन-अयोग्य व्यवहार का कारण है विकृत मस्तिष्क और अशिव मन।

मनः-

मन ज्ञानेन्द्रियों (नेत्र, श्रेत्र, घ्राण, रसना और त्वचा) और

कर्मेन्द्रियों (जिह्वा, कर, पग, उपस्थ और गुदा) का प्रेरक है। मन के सहयोग के बिना कोई भी कर्म कार्य नहीं हो सकता।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

यजुर्वेदः 34.3

जिसमें धैर्य, शक्ति, चिंतन तथा ज्ञान रहता भरपूर।
प्राणीमात्र में अमृतमय है और प्रकाश का बहता पूर।।
जिसके बिना नहीं चलता है निश्चय कोई कार्य विधान।
नित्य युक्त शुभ-संकल्पों से वह मन मेरा हो भगवान्।।

मन के शिव-संकल्पी हो जाने पर समस्त इन्द्रियों का सकल व्यापार शुद्ध, शिव और शान्ति प्रद हो जाता है।

मन साधे इन्द्रियाँ सधें, सधे सकल व्यवहार।
मन बिगड़े-बिगड़े सभी, बिगड़े इन्द्रिय व्यापार।।

मानव का अपना जीवन ही शांति और अशान्ति का धाम है। यदि मानव के अपने ही जीवन में उसका अपना मन शांत है और उसकी अपनी इन्द्रियों का व्यापार निर्विकार है तो उसमें शान्ति निवास करती है।

सच्ची और स्थायी शान्ति प्राप्त करने के लिए हमें अपने मन को शिव संकल्प युक्त एवं विवेकशील बनाना होगा। इसके लिए दृढ़-आत्म विश्वास एवं आस्तिकता अर्थात् सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, परम-शान्तिदायक, आनन्द स्वरूप परमात्मा में मन को लगाये रखना होगा। अर्थात् वैदिक रीति से ईश्वर की उपासना एवं योग-जीवन पद्धति पर जीवन चलाना होगा।

निम्न वेदमंत्र में ईश्वर के सात-गुणों को धारण करके शान्ति प्राप्त करने का मार्ग-दर्शन किया गया है।

ओं! शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥

यजुर्वेदः 36.8

1. मित्रः नः शम्– मित्र नामक प्रभु हमें शान्ति देने वाले होंवे। वस्तुतः जब हम परस्पर मित्र-भाव से व्यवहार करेंगे तभी शान्ति प्राप्त होगी। ईष्या-द्वेष तो मानव को जलाते रहते हैं। स्नेह-प्रेम के अभाव में शान्ति कहाँ?

2. वरुणः शम्–वरुण-प्रभु हमें शान्ति दें। वरुण=श्रेष्ठ कर्म-कर्त्ता बनकर ही हमें शान्ति प्राप्त होगी।

3. अर्यमा नः शम् भवतु–अर्यमा (निरपेक्ष दाता) प्रभु हमें शान्ति दे। हम भी निरपेक्ष भाव से देने वाले दानी बनें तभी शान्ति मिलेगी। सौ हाथों से कमायें हजाार हाथों में बाँटे। कंजूस व्यक्ति को शान्ति नहीं मिलती।

4. इन्द्रः न शम् –इन्द्र नामक प्रभु हमें शान्ति दें। हम भी अपनी इन्द्रियों के अधिष्ठाता स्वामी बनकर, तथा आसुरी वृत्तियों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार, द्वेष) का संहार करके शान्ति प्राप्त करें। इन्द्रियों का दास वासनाओं के सागर में डूब जाता है। उसे शान्ति कहाँ?

5. बृहस्पतिः न शम्–बृहस्पति (वेद-ज्ञान का स्वामी) परमेश्वर हमें शान्ति दे। वेद-ज्ञान को प्राप्त करके, तदनुसार आचरण करने से तथा अपनी वाणी को सत्य, प्रिय और मधुर बनाने से ही शान्ति मिलेगी।

'जिह्वा अग्रे मधु मे, जिह्वा मूले मधूलकम्'

अथर्ववेदः 9.34.2

मेरी जिह्वा के अग्र आग पर शहद जैसी मिठास-मधुरता होवे और हृदय में भी मधु का स्रोत बहता हो।

मधुमन्मे निक्रमणम् मधुमन्मे परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद भूयांस मधु सदृशः।।

अथर्ववेदः 1.34.3

घर से निकलूँ मैं मधुमय बन, दूर-दूर जाना मधुमय हो।
वाणी से मैं मधुरिम बोलूँ, मधु जैसा मीठा जाऊँ हो।।

6. विष्णु न शम्–विष्णु (सर्वव्यापक) परमेश्वर हमें शान्ति दे। हम भी विशाल हृदयवाले एवं व्यापक मनोवृत्ति वाले बनकर शान्ति प्राप्त करें। संकुचित हृदय वाला व्यक्ति दूसरों के उत्कर्ष-उन्नति को देखकर जला करता है–ऐसे व्यक्ति को शान्ति कैसे?

7. उरुक्रमः न शम्–महान् पराक्रम वाला प्रभु हमें शान्ति दे। 'उरुक्रम' का एक अर्थ महान व्यवस्थावाला भी है। अतः हम भी अपने जीवन को व्यवस्थित एवं पराक्रमी बनाकर शान्ति प्राप्त करें।

उपर्युक्त सात गुणों को धारण करके और वाणी को सत्य, प्रिय, मधुर बनाकर तथ मन को शिव-संकल्पी बनाकर निश्चित रूप से हमें सच्ची शान्ति प्राप्त हो जायेगी।

तुलसी मीठे वचन ते सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण यह मंत्र है, तजदे वचन कठोर।।
ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होय।।

–कृष्णऔतार, बढ़ापुर

ऐसा वर दो

ऐसा वर दो देव दिवाकर, जीवन बने सत्य, शिव, सुन्दर
निर्विकार आँखों से देखूँ, सौ वर्षों पर्यन्त स्नेह से।
सरल, सरस, सत वाणी बोलूँ, कर्म करूँ सौ वर्ष देह से।।
सुनुँ सत्य सौ वर्ष निरन्तर, ऐसा वर दो देव दिवाकर।
कभी दीनता आ न सके, मेरे दैदीप्त दीर्घ जीवन में।
वाणी में बल, तेज आँख में, और सजगता रहे श्रवण में।।
उमड़े सहज सुधा का निर्झर, ऐसा वर दो देव दिवाकर।
जीवन बने सत्य शिव सुंदर।।

ओंकार जप द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार

ओ३म् ब्रह्म का मुख्य और सर्वोत्तम नाम है। इस 'ओ३म्' नाम से ब्रह्म का स्मरण करने से सब प्रकार के क्लेशों व कष्टों की निवृत्ति होकर शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व आत्मिक उन्नति होकर आत्म-साक्षात्कार एवं ब्रह्म-साक्षात्कार हो जाता है। इसके जप के लिए स्वयं परमेश्वर उपदेश करते हैं-

ओ३म् नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः।
यदजः प्रथमं सं बभूव सह तत् स्वराज्यमियाय
यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम्॥

अथर्ववेदः 10.7.31

अर्थ-(**नाम**) नमस्कार करने योग्य परमपूज्य परमेश्वर को (**नाम्ना**) 'ओ३म्' नाम के द्वारा जो (**जोहवीति**) जपता है, बार-बार स्मरण करता है (**पुरा उषसः**) उषा काल के पूर्व और (**पुरा सूर्यात्**) सूर्यास्त से पूर्व (**यत् अजः**) जो अजन्मा आत्मा (**प्रथमम्**) सब प्रकार सबसे श्रेष्ठ ब्रह्म के प्रति (**सं-बभूव**) संयुक्त हो जाया करता है। अपने आत्मा को ईश्वर-प्रणिधान द्वारा ब्रह्म में मग्न करता है (**सः ह**) वे ही आत्मायें (**तत्**) उस (**स्वराज्यम्**) स्वतन्त्रता को मुक्ति को (**इयाय**) प्राप्त करती हैं (**यस्मात्**) जिससे (**परम**) बढ़कर उपलब्धि (**अन्यत् भूतम्**) अन्य कोई पदार्थ (**न अस्ति**) नहीं है।

ओ३म् एवं ब्रह्म (यजुः 40. 17)-सब का रक्षक होने से ईश्वर का नाम 'ओ३म्', आकाश की भाँति व्यापक होने से वह 'खम्' और सबसे बड़ा होने से 'ब्रह्म' है।

समस्त गुरुओं का गुरु-परमगुरु-'ओ३म्' है, जो किसी भी देश

व काल के बंधन में ही नहीं आता, अपितु काल ही जिसके बंधन में है। अतः गुणों में सबसे बड़े गुरु–'ओ३म्' नाम का ही नित्य प्रति प्रातः सायं जप करना चाहिए। भूलकर भी किसी नाम दान करने वाले अथवा तन–मन–धन अर्पण कराने वाले सांसारिक लोभी व वेद–ज्ञान विहीन गुरु के जाल में न फंसे। कोई भी सांसारिक गुरु परमात्मा का स्थान नहीं ले सकता और न ही सर्वज्ञ हो सकता है।

ओ३म् का अर्थ

'ओ३म्' शब्द में परमेश्वर के गुणों को बताने वाले सभी अर्थ आ जाते हैं। यह नाम अ,उ,म् संयोग से बनता है। 'अ' से अकार, 'उ' से उकार, 'म' से मकार होता है। 'अकार' से अग्नि, विराट, विश्व आदि, 'उकार' से हिरण्यगर्भ, वायु, तेजस आदि, 'मकार' से ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञः आदि। **(अग्नि)** जो प्रकाश स्वरूप, सुखस्वरूप और ज्ञान स्वरूप है। **(विराट)** जो विविध प्रकार से जगत् की रचना करता है। **(विश्व)** जो समस्त विश्व में व्याप्त है। **(हिरण्यगर्भ)** सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ जिसके गर्भ से उत्पन्न होकर जिसके आश्रय से रहते हैं। **(वायु)** जो सम्पर्णू संसार को धारण करने वाला तथा अत्यन्त शक्तिशाली है। **(तेजस)** जो स्वयं प्रकाश स्वरूप और सूर्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाशक है। **(ईश्वर)** जिसका सत्य विचारशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है। **(आदित्य)** जिसका विनाश कभी न हो। **(प्राज्ञः)** जो निर्भ्रान्ति, ज्ञान युक्त, सब चराचर जगत् के व्यवहार को यथावत् जानता है।

संसार में कैसे रहें?

जो कुछ है सम्पूर्ण जगत में, सब में परमेश्वर है व्याप्त।
धन किसका है? लालच मतकर! भोग त्याग से जो भी प्राप्त।।
इच्छा कर सौ वर्ष आयु की, करता हुआ कर्म सविवेक।
यों कर्मों से लिप्त न होगा। यही मार्ग है उत्तम एक।।

'ओ३म्' की महिमा

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ओमित्येतत्॥

कठोपनिषद: 1.2.15

समस्त वेद जिस पद का व्याख्यान करते हैं, तपस्वीगण जिस पद के महत्त्व को प्रकाशित करते हैं, जिस पद की प्रप्ति की इच्छा रखते हुए ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हैं, वह पद, मैं तुम्हें संक्षेप में बताता हूँ-वह परम पद 'ओ३म्' है।

ओमित्येदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं
भूतं-भवद्-भविष्यदिति सर्वमोंकार एव।
यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥

माण्डू० उप०: 1

'ओ३म्' यह अविनाशी पद है। यह सारा ब्रह्माण्ड उसीकी व्याख्या या विस्तार है। भूत, वर्तमान और भविष्य सब ओंकार ही है। इसके अतिरिक्त जो कुछ तीनों कालों से हट कर है, वह भी ओंकार है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

गीता: 8.13

मेरा लगाता ध्यान, कहता 'ओ३म्' अक्षर ब्रह्म ही।
तन त्याग जाता जीव जो, पाता परमगति है वही॥

महर्षि पतंजलि ने अपने ग्रन्थ 'योगदर्शन' में परमेश्वर के नाम 'ओ३म्' के विषय में कहा है-**तस्य वाचकः प्रणवः**, (समाधि-पाद-26) अर्थात् उस ईश्वर का वाचक प्रणव (ओ३म्) है। **तज्जपस्तर्थ भावनम्**, (समाधिपाद-28) उस प्रणव (ओ३म्) का जप और उसके अर्थ (ईश्वर) का बार-बार चिन्तन करना चाहिए।

गुरु नानक जी ने सब मनुष्यों को केवल 'ओ३म्' जप का ही उपदेश दिया है।

ओंकार ब्रह्म उत्पत्ति। ओंकार किया जिन चित्त॥
ओंकार सैल जुग भये। ओंकार वेद निरमये॥
ओंकार शब्द जप रे। ओंकार गुरु मुख तेरे॥

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने परमपिता परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम, 'ओ३म्' ही बताया है "जो ईश्वर का ओंकार नाम है, सो पिता-पुत्र के सम्बन्ध के समान है, और यह नाम ईश्वर को छोड़ के दूसरे अर्थ का वाची नहीं हो सकता। ईश्वर के जितने नाम हैं, उनमें ओंकार सबसे उत्तम है। इसलिए इसी नाम का जप अर्थात् स्मरण करना चाहिए और उसी का अर्थ विचार करना चाहिए कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो, जिससे उसके हृदय में परमात्मा का प्रकाश और परमेश्वर की प्रेम-भक्ति सदा बढ़ती जाये।"

(ऋग्वेदादि भा॰ भू॰ उपासना विषय)

वेदों में मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक 'ओ३म्' के स्मरण का उपदेश है। तभी तो बालक के जन्म लेते ही उसकी जिह्वा पर शहद में डुबाकर सोने की सिलाई से 'ओ३म्' लिखने तथा उसके कान में 'वेदोसीति' अर्थात् तेरा गुप्त नाम वेद है, कहने का आदेश है (संस्कार विधि)।

ओ३म् की महिमा

ओ३म् है जीवन हमारा, ओ३म् प्राणाधार है।
ओ३म् है कर्त्ता विधाता, ओ३म् सर्वाधार है।
ओ३म् है दुःख का विनाशक, ओ३म् सर्वानन्द है।
ओ३म् है बल तेजधारी, ओ३म् करुणा कन्द है॥
ओ३म् सबका पूज्य है, हम ओ३म् का पूजन करें।
ओ३म् ही के ध्यान से हम, शुद्ध अपना मन करें॥
ओ३म् का गुरुमंत्र जपने से रहेगा शुद्ध मन।
बुद्धि दिन-प्रति-दिन बढ़ेगी, धर्म में होगी लगन।
ओ३म् के जप से हमारा ज्ञान बढ़ता जायेगा।
अन्त में यह 'ओ३म्' हमको मुक्ति तक पहुँचायेगा।

इसी प्रकार जीवन के अन्त में भी 'ओ३म्' जपने का आदेश दिया गया है–**'ओ३म् क्रतो स्मरं। क्लिवे स्मर। कृतं स्मर'** (यजु०: 40.15) अर्थात् हे कर्म करने वाले जीव! तू शरीर छूटते समय 'ओ३म्' का स्मरण कर। अपने सामर्थ्य के लिए परमात्मा और अपने स्वरूप (आत्मा) का स्मरण कर, अपने किये गये कर्मों का स्मरण कर।

चारों वेद, उपनिषद, योगदर्शन, महर्षि दयानन्द आदि यही उद्‌घोष कर रहे हैं कि 'ओ३म्' जाप ही ईश्वर को पाने का एकमात्र साधन है। जाप का एक ही रहस्य है। जाप में अन्य कोई विचार न आये, ईश्वर का ध्यान बना रहे तथा ईश्वर के गुण-आनन्द का अनुभव लगातार होता रहे।

'ओ३म्' शब्द की सूक्ष्मतम आनन्दमयी दिव्य तरंगें सर्वत्र व्याप्त हैं। 'ओ३म्' वह पद है, जिसका अन्वेषण ऋषियों ने सब ध्वनियों के मूलभूत-'नाद' के रूप में किया है। वैज्ञानिक भी अब जान गये हैं कि एक मूलभूत नाद या ध्वनि तरंग ही अणु-परमाणु की संरचना में स्पन्दित होकर सृष्टि को विधिवत् और विविध रूप-आकार प्रदान कर रही है।

ओ३म् जाप की अनेक विधियाँ हैं। ऊँचे स्वर से बोलना, गाकर बोलना, होठों में जपना, श्वास-प्रश्वास में ओ३म् का अनुभव करना, मन में जपना, हृदय की धड़कन में जपना, ब्रह्मरन्ध्र में जपना, अंग-अंग से जपा जाता प्रतीत होना, आकाश में सर्वत्र ओ३म् की ध्वनि में मग्न हो जाना।

जप करके जिनको आनन्द का अनुभव नहीं होता उनका मन चंचल और मलिन है। विषयासक्ति ही मलिनता है। प्रत्याहार और ईश्वर प्रणिधान की साधना करने से विषयासक्ति समाप्त हो जाती है।

ओ३म् का मानसिक जप, जब प्राणों के साथ संयुक्त करके किया जाता है, तब प्राण सूक्ष्म हो जाते हैं, तथा मानसिक जप

सब स्वतन्त्र रूप से किया जाता है तो मन अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है। मन-प्राणों के सूक्ष्म हो जाने पर ओ३म् की दिव्य तरंगें उत्पन्न होकर पूरे सूक्ष्म शरीर को ओ३म् मय बना देती हैं।

ओ३म् के ध्यान के द्वारा आत्मा को निर्मल एवं स्थिर किया जाता है। आत्मा के ओ३म् मय हो जाने पर समाधि-अवस्था प्राप्त होने पर आत्मा ओ३म् की दिव्य तरंगों को ग्रहण करती हैं, और उनसे आत्मा को ईश्वर की प्रेरणा प्राप्त होती रहती है। ओ३म् की दिव्य तरंगों को ग्रहण करने की शक्ति केवल आत्मा में ही होती है।

'ओ३म् ' जप और ध्यान की सरल विधि

साधक/साधिका किसी भी एक आसन (सुखासन, सिद्धासन, पद्मासन) पर बैठने का अभ्यास कर लेवें। एक मीटर लम्बी व एक मीटर चौड़ी तथा एक इंच मोटी रुई की गद्दी पर स्वच्छ, शान्त एवं एकान्त स्थान में बैठकर सिर, गर्दन व कमर सीधी रखते हुए, दोनों हाथ ज्ञान मुद्रा (अंगूठा व तर्जनी अंगुली के अग्रभाग मिले हुए) में, हथेली ऊपर की ओर घुटनों पर रक्खें, आँखें बंद रहें। मन को ब्रह्मरन्ध्र अथवा भृकुटी-मध्य में 'ओ३म्' के साथ संयुक्त करके शान्त भाव से ऐसा अनुभव करें-"मैं आकाशवत् सर्वव्यापक निराकार, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप 'ओ३म्' परमेश्वर की अमृतमयी गोद में स्थित हूँ, वह प्रभु मेरे बाहर-भीतर सर्वत्र विद्यमान है।"

सर्वप्रथम अर्थ की भावना के साथ गायत्री-मंत्र का उच्चारण करें, तत्पश्चात् 3 से 11 बार तक दीर्घ श्वास लेकर मधुर ध्वनि से 'ओ३म्' का नाद करें। मन ही मन अनुभव करते रहें कि 'ओ३म्' की आनन्दमयी दिव्य तरंगें श्वास के द्वारा मेरे शरीर के प्रत्येक अंग में प्रवेश कर रही हैं, मेरा तन-मन-बुद्धि एवं आत्मा ओ३म्मय हो रहे हैं। शान्त भाव से बैठे रहें। जब समय पूरा हो

जाये तब अन्त में पुनः तीन बार मधुर ध्वनि से–'ओ३म् का नाद करें तथा इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए–**'ओं तेजो यत् ते रूपं कल्याणतमं तत् ते पश्यामि।'** अपनी दोनों हथेलियों को आपस में रगड़ते हुए गर्म होने पर अपने चेहरे पर हल्की मालिश करते हुए आँखें खोलें। हाथ-पैर यदि अकड़ गये हों तो हल्के योगासन कर लें।

उपर्युक्त अभ्यास श्रद्धापूर्वक, नियमित रूप से प्रतिदिन आधा से एक घंटा तक करते रहने से अन्तर्यामी प्रभु के अमृतानन्द की वर्षा आपकी आत्मा में अवश्य होगी।

–कृष्णऔतार, बढ़ापुर

महामृत्युञ्जय मंत्र

ओ३म् त्र्यंम्बकं यजामहे सुगन्धिम्, पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।

यजुर्वेद: 3.60

हे परमेश्वर! आप जगत को, शुद्ध गन्ध से भरते हैं।
सब भाँति बल आप बढ़ाते, नमन आपको करते हैं।।
खरबूजा-फल पक कर, जैसे लता-मुक्त हो जाता है।
बंधन से जब छुट चले तो। अमृत सा बन पाता है।।
वैसे ही हम जग बन्धन से, मृत्यु-दुःख से छुट जायें।
हे परमेश्वर! मोक्ष प्रदाता मोक्ष सुखों को हम पायें।।

वैदिक स्वर्ग–गृहस्थाश्रम

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लिखा है–**स्वर्ग** नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है। यह स्वर्ग कहीं और नहीं, इसी धरती पर मानव–देह में रहते हुए ही प्राप्त किया जा सकता है।

हमारे धर्म–ग्रन्थों के अनुसार स्वर्ग कहीं है तो वह है हमारा अपना ग्रहस्थाश्रम। ग्रहस्थाश्रम संसार की सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्येष्ठ संस्था है, शेष तीनों आश्रम ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास तो इसके उपाश्रम हैं। संसार के समस्त मानवों का जन्म उनका पालन–पोषण एवं जीवन का निर्माण गृहों में ही होता है। अतः गृहों और परिवारों के सुनिर्माण से ही समाज, राष्ट्र एवं विश्व का सुनिर्माण होकर समस्त संसार को स्वर्गधाम बनाया जा सकता है। सु–सन्तति का जन्म एवं सुनिर्माण समस्त विज्ञानों का महा–विज्ञान है। महर्षि दयानन्द ने मानव को श्रेष्ठ–दिव्य मानव बनाने के लिए जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु पर्यन्त 16 वैदिक संस्कारों का विधान किया है, जिनको भली–भाँति समझकर आचरण में लाने से मानव के लोक व परलोक दोनों ही सुखधाम (स्वर्ग) बन जायेंगे।

महाभारत युद्ध के पश्चात विभिन्न मतावलम्बियों ने, वेद ज्ञान विहीन अज्ञानियों एवं पाखण्डियों ने स्वर्ग और नरक के बारे में बड़ी–बड़ी विचित्र कल्पनायें गढ़ कर स्वर्ग और नरक स्थान विशेष के नाम बतलाये, जो मरने के बाद ही प्राप्त होते हैं। बाइबिल वालों ने चौथे आसमान पर, कुरान वालों ने सातवें आसमान पर, पुराण वालों ने बैकुण्ठ, साकेत, गोलोक आदि में स्वर्ग की मिथ्या

कल्पनायें मानव-समाज को बतलाईं तथा स्वर्ग प्राप्ति के लिए अपने-अपने मतानुसार विभिन्न प्रकार से पूजा-पाठ जप, तप, तीर्थ, व्रतादि करने के विधान-नियम बना कर प्रचारित किए। अवैदिक अनार्य संस्कृति के प्रचार-प्रसार एवं सिनेमा व दूरदर्शन (दुष्ट-दर्शन) के माध्यम से पश्चिम की भोगवादी आँधी के कारण धरती के स्वर्ग गृहस्थाश्रम उजड़ रहे हैं, परिवार टूट रहे हैं, नरक-धाम बन गये हैं, बनते जा रहे हैं। माता-पिता के सम्बन्ध समाप्त होकर ममी (सुरक्षित शव), डैडी-(डेड-बाडी) पापा (पाप) आ विराजे हैं। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहिन के पवित्र सम्बन्ध समाप्त होकर स्वार्थ एवं द्वेष बढ़ा रहे हैं, परस्पर मुकदमे-बाजी हो रही है। वैदिक संस्कृति में सर्वोच्च पद को प्राप्त सृष्टि की ब्रह्म-नारी, परिवार की सम्राज्ञी, गृहलक्ष्मी को गर्भ में ही कत्ल किया जा रहा है। सैंकड़ों देवियाँ दहेज, अपरहण, बलात्कार आदि अनेक कारणों से आत्महत्या कर रही हैं। श्रद्धा की मूर्ति नारी आज विज्ञापन, प्रदर्शन एवं भोग की सामग्री बन गई है। संस्कृति का अर्थ नाचना व गाना समझा जाने लगा है। आज की नारी मिस-यूनविर्स, मिस-इण्डिया, मिस-अग्रवाल बनने में अपना गौरव समझ रही है। इन सौंदर्य-प्रतियोगिताओं से तो नारी स्वयं ही पुरुष वर्ग का खिलौना प्रदर्शन और विज्ञापन की वस्तु बन रही है।

हम ऋणी हैं उस महर्षि दयानन्द के जिन्होंने प्रभु की अमर वाणी सृष्टि के संविधान वेद के आधार पर उपर्युक्त समस्त बुराईयों, कुरीतियों का विरोध किया तथा नारी को सृष्टि की ब्रह्मा बतलाया **'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ'** (ऋ०: 8.33.19) तथा राजर्षि मनु के शब्दों में घोषणा की।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।'

मनु०: 3-56

जिन परिवारों में नारियों का सम्मान होता है, वहीं देवोपम सन्तान का आगमन होता है और जहाँ उनका निरादर व अपमान

होता है, वहाँ आसुरी राक्षस सन्तान जन्म लेती है।

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥

मनु॰: 3.60

जिस कुल में पत्नी से पति और पति से पत्नी सदैव प्रसन्न रहती हैं, उस कुल में लक्ष्मी, कीर्ति निवास करती है अर्थात् उस कुल का सैदव ही कल्याण होता है।

महर्षि ने बतलाया–स्वर्ग और नरक कोई देश–विशेष या स्थान विशेष नहीं हैं, अपितु जहाँ हम और आप जन्मे हैं, निवास करते हैं, हमारा घर एवं परिवार ही स्वर्गलोक है, जो बिगड़ जाने पर नरक बन जाता है।

वेदानुसार स्त्री–गृह–यज्ञ की, समाज, राष्ट्र एवं विश्व–यज्ञ की ब्रह्मा है। (चार मुखवाला ब्रह्मा कोई नहीं है)। मानव सृष्टि की रचयित्री, निर्माणकर्त्री, संचालिका स्त्री ही है। **यथा ब्रह्मा–तथा रचना।** यदि स्त्री का अपना जीवन संयम, लज्जा, सुशीलता, पवित्रता आदि गुणों से युक्त होगा तो उसकी सन्तान भी शुद्ध, संयमी, धर्मात्मा एवं कर्त्तव्यपरायण होगी। यदि ब्रह्मा अबोध और अज्ञानी है तो उसकी रचना भी त्रुटिपूर्ण होगी। बच्चे की प्रथम गुरु माता ही है। **'माता निर्माता भवति'**, दूसरे नम्बर पर पिता और तीसरे नम्बर पर आचार्य का स्थान है। महर्षि मनु के अनुसार माता का गौरव–स्थान पिता से एक हजार गुना ऊँचा है तथा गृहस्थ का मुख्य आधार पत्नी को बतलाया है।

'दाराधीनस्तथा स्वर्गः' यह स्वर्ग पत्नी के आधीन है। महर्षि मनु ने घर को स्वर्ग बनाये रखने के लिए प्रत्येक गृहिणी में निम्न चार गुणों का होना भी आवश्यक बतलाया है।

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्त हस्तया॥

मनु॰: 5.150

1. सदा प्रसन्न रहने का स्वभाव होना।
2. घर का प्रत्येक कार्य दक्षता-कुशलतापूर्वक करना।
3. घर की प्रत्येक वस्तु शुद्ध-पवित्र और यथास्थान रखना।
4. आय के अनुसार ही सोच-विचार करके खर्चा करना।

किसी को दान भी देना हो तो पतिदेव की सहमति से देना।

घर को स्वर्ग बनाये रखने के लिए पुरुष वर्ग भी वेद माता के निम्न आदेश का पालन करे।

इन्द्रश्चिद धा तदब्रवीत स्त्रिया अशास्यं मनः।
उतो अह क्रतुं रघुम्॥

ऋ०: 8.33.17

स्त्रियों का मन अशस्य है और उनका क्रतु लघु-हल्का है। अतः उनके मन का शासन न किया जाये और उनसे कठोर व भारी कार्य न कराया जाये। स्त्री का कार्य क्षेत्र घर की सुव्यवस्था एवं सु-सन्तति का निर्माण करना है और पति का कार्यक्षेत्र घर से बाहर श्रम करना, धनोपार्जन करना व अन्य भारी व कठोर कार्य करना है।

स्त्री शासन नहीं स्नेह व प्रेम चाहती है। पति का धर्म है कि वह पत्नी को चिन्ताग्नि में न जलाये।

स्त्री का मन सुकोमल तालाब का कमल है।
खिलता है जो समादार-सौहार्द्र स्नेह जल से॥
स्त्री का मन सुकोमल वह फूल है चमन का।
मुरझाये जो तपन से, खिल जाये स्नेह जल से॥
स्त्री का मन सुकोमल आनन्द की वह निधि है।
बढ़ती है प्रेम से जो, घटती है क्रूरता से॥
स्त्री का मन सुकोमल वह दैवी सम्पदा है।
रहती है जो सुरक्षित सत्कार साधना से॥
स्त्री का मन सुकोमल प्रसाद है वह पावन।
जिसका प्रभाव फूटी किस्मत को भी जगा दे।

स्व० विद्यानन्द विदेह

हे मानव! नारी नारायण की प्रतिमा है।
नारी को नमस्कार कर–उसका तिरस्कार न कर।
तभी तेरा घर स्वर्गधाम बनेगा।

वेदमाता के शब्दों में स्वर्गलोक के दर्शन करें।

स्वर्गलोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम्।
गृहणामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारिन्निर्ऋतिमो अराति॥

अर्थव॰: 12.3.17

इस वेद मंत्र में कामना की गई है कि विद्वान् पुरुष हमको ऐसी प्रेरणा दें तथा पथ-प्रदर्शन करें, जिससे हम लोग स्वर्गलोक के दर्शन कर सकें। वहाँ पत्नी और पुत्रादि पारिवारिक जनों के साथ सभी सुख-सुविधाओं का उपभोग करते हुए इस प्रकार से जीवन व्यतीत करें जिससे हमारे हृदय तथा परिवार को दरिद्रता एवं कंजूसी दबा न सके।

ओं इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तो पुत्रैर्नप्तृभिर् मोदमानौ स्वे गृहे॥

ऋ॰ 10.85.42

रहो इसी आश्रम में दोनों, विलग कभी भी होना मत तुम।
पूर्ण आयु का सुख भी भोगो, पुत्र-पौत्र सन्तान सहित तुम।
खेलो-कूदो मौज मनाओ, अपने घर में रहो मुदित तुम॥

वेदों में कहीं भी तलाक को स्थान नहीं दिया गया है।

इस वैदिक स्वर्ग के सच्चे-असली देवी-देवता हैं—हमारे जीवित माता, पिता, आचार्य, अतिथि, पति-पत्नी, मातृ देवो भव, पितृ देवा भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव, पति देवो भव, पत्नी देवो भव।

जिन परिवारों में इन जीवित सच्चे देवी-देवताओं की पूजा सेवा, सत्कार, सम्मान होता है वहीं सच्चा स्वर्ग है।

धरती पर स्वर्ग बनाना है, जो अपना घर संसार हमें।
तो करना है माँ-बाप, गुरु, अतिथि, पति-पत्नी से प्यार हमें।।
जो अपना ज्ञान, प्रेम, सुख देकर, हमें सुखी बनाते हैं।
माँ-बाप, गुरु, अतिथि, पति-पत्नी ही पाँच देव कहलाते हैं।।
यह पंचायतन पूजा की विधि, करनी होगी स्वीकार हमें।
धरती पर स्वर्ग बनाना है, जो अपना घर संसार हमें।।

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः शुचयः शुचमपि यन्ति लोकम्।
नैषा शिश्नं प्रदहति जातवेदाः स्वर्गेलोके बहु स्त्रैणमेषाम्।।

अथर्व॰: 4.34.2

घृत ह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतस्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गेलोके मधुमत्पिन्वमानाः।।

अथर्व॰: 4.34.6

भावार्थ–

स्वस्थ शरीर एवं पवित्र वृत्तिवाले, प्राणायाम द्वारा शुद्ध अन्तःकरण वाले, व्यक्ति कामाग्नि से संतप्त नहीं होते। इनके इस स्वर्गलोक में बहुत सी स्त्रियाँ–दादी, माता, भौजाई आदि सुखपूर्वक निवास करती हैं।

ऐसे स्वर्गतुल्य गृहस्थाश्रम में घी, दूध, दही, मधु, पवित्र जल आदि पर्याप्त मात्रा में आनन्दपूर्वक प्राप्त होते हैं।

यत्र सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
अश्लोणा अंगैरहुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान।।

अथर्व॰: 6.120.3

भावार्थ–स्वर्ग तुल्य घर वह है, जहाँ (1) सबके हृदय पवित्र हों (2) सब यज्ञादि उत्तम कर्मों को करने वाले हैं। (3) सबके शरीर निरोग हैं, (4) अंग अविकृत हैं (5) स्वभाव सरल व अकुटिल हैं (6) माता-पिता का आदर-सम्मान और सेवा होती है तथा (7) संतानों की शिक्षा-दीक्षा ठीक है।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु सं मनाः।
जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु शान्तिवाम्।।

अथर्व॰: 3.30.2

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः स-व्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।

अथर्व॰: 3.30.3

भावार्थ- स्वर्गतुल्य परिवार में पुत्र-पिता के व्रतों-नियमों के अनुकूल आचरण करने वाला हो तथा माता के साथ मन को मिलाकर चले। पत्नी पति के लिए शान्ति युक्त मधुर वाणी में वार्तालाप करे तथा पति भी ऐसा ही करे।

भाई-बहिनों में परस्पर प्रेम हो। परिवार में सब मिलकर चलने वाले हों और परस्पर भद्र वाणी में बातचीत करें।

अपने गृहों को स्वर्गधाम बनाये रखने के लिए वेद माता ने निम्न सात मर्यादाओं के पालन का आदेश दिया है।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि-यौष्ट, सं राधयन्तः सधुराशचरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत् सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि।।

अथर्व॰: 3.30.5

भावार्थ-(1) परिवार में बड़ों का आदर हो (2) उत्तम चित्तवाले हों (3) एक दूसरे का विरोध न करें (4) सब मिलकर काम करने वाले हों (5) सब एक धुरी में जुड़े हुए अपने-अपने दायित्वों का पालन करें। (6) परस्पर मधुर-प्रिय बोलें (7) एक विचार से युक्त मन वाले होकर मिलकर पुरुषार्थ करें।

जिस परिवार में सभी छोटे-बड़े सदस्य वैदिक मर्यादाओं व उत्तम परम्पराओं का पालन करते हुए धर्म-पूर्वक धनार्जन करके धन का सदुपयोग एवं परोपकार रत रहते हैं, वहीं सच्चा सुख है और वहीं स्वर्गधाम है।

-कृष्णऔतार, बढ़ापुर

नोट- विस्तार के लिए सत्यार्थप्रकाश का चतुर्थ समुल्लास पढ़ें।

गृहस्थ विज्ञान

विश्व की समस्त मानव जाति गृहों में ही जन्मती है, गृहों में ही पाली-पोषी जाती है और गृहों में ही निवास करती है। गृहस्थाश्रम है मानव का उत्पत्ति-स्थल, जीवन का निर्माण-स्थल और श्रेष्ठतम कर्म करने का शिक्षण-स्थल। गृहस्थाश्रम संसार की सबसे बड़ी और श्रेष्ठतम संस्था है। गृहों और परिवारों के सुनिर्माण से ही समाजों एवं राष्ट्रों का सुनिर्माण होकर विश्व को स्वर्गधाम बनाया जा सकता है।

संसार के महान् वैज्ञानिक आइन्सटाइन से एक पत्र-प्रतिनिधि ने प्रश्न किया—संसार में इतने दुःख हैं, इतनी अशान्ति है, क्या उसे दूर करने का भी कोई उपाय है? विज्ञानाचार्य बोले-हाँ है, और केवल एक ही उपाय है..अच्छे मनुष्य उत्पन्न किए जायें।

प्रत्येक विषय और कार्य के लिए छात्र व छात्राएँ देश-विदेशों में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं किन्तु वैवाहिक जीवन, जिसमें मानव का जन्म, पालन-पोषण व निर्माण होता है, के विषय में किसी भी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं समझी जा रही है। सु-सन्तति का जन्म और सुनिर्माण समस्त विज्ञानों का महाविज्ञान है। इस विज्ञान की उपेक्षा के कारण ही मानव जाति का पतन व दुर्दशा हो रही है, तथा समस्त संसार आतंकवाद से ग्रस्त होकर विनाश के कगार पर खड़ा है।

महर्षि दयानन्द ने मानव को श्रेष्ठ व दिव्य मानव बनाने का विज्ञान **संस्कारविधि** नामक पुस्तक में लिख दिया है, जिसमें जन्म के भी पूर्व से लेकर मृत्युपर्यन्त 16 वैदिक संस्कारों का विधान

दिया है। जिन्हें भली भाँति समझकर आचरण-व्यवहार में लाने से निश्चय ही श्रेष्ठ एवं दिव्य मानवों का निर्माण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त महर्षि ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में गृहस्थाश्रम के सुनिर्माण के सम्बन्ध में बड़ा ही सुन्दर मार्गदर्शन किया है। आवश्यकता है उसे पढ़ व समझकर आचरण में लाने की, आपके घर स्वर्गधाम बन जायेंगे।

गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ स्त्री व पुरुष के विवाह हो जाने पर होता है। वैदिक ऋषियों ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश का अधिकार ऐसे युवक व युवतियों को दिया है, जिन्होंने अपने शरीर, मन तथा आत्मा की उन्नति कर ली हो। ऋषियों ने अब्रह्मचारी या अब्रह्मचारिणी को गृहस्थाश्रम में प्रवेश पाने का अधिकार नहीं दिया है। राजर्षि मनु ने कहा है.**अविपलुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्।** जिसके ब्रह्मचर्य का भंग न हुआ हो, वही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें।

कन्या के लिए भी अथर्ववेद (11.5.18) में आदेश है

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाशके चतुर्थ समुल्लास में ऋग्वेद के मंत्र (3.8.4) की व्याख्या इस प्रकार लिखी है–

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः।
तं धीरासः कवयः उन्नयन्ति स्वाध्यो ३ मनसा देवयन्तः॥

अर्थ–जो पुरुष सब ओर से यज्ञोपवीत, ब्रह्मचर्य सेवन से उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त सुन्दर वस्त्र धारण किया हुआ ब्रह्मचर्ययुक्त, पूर्ण जवान होकर, विद्या ग्रहण कर गृहस्थाश्रम में आता है, वहीं दूसरे विद्याजन्म में प्रसिद्ध होकर अतिशय शोभायुक्त मंगलकारी होता है। अच्छे प्रकार ध्यानयुक्त विज्ञान से विद्यावृद्धि की कामना युक्त, धैर्ययुक्त विद्वान लोग उसी पुरुष को उन्नतिशील करके प्रतिष्ठित करते हैं और जो ब्रह्मचर्य धारण, विद्या, उत्तम शिक्षा का ग्रहण किये बिना अथवा बाल्यावस्था में विवाह करते हैं वे

स्त्री-पुरुष नष्ट-भ्रष्ट होकर विद्वानों में प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं होते।

किसी व्यक्ति ने महर्षि से प्रश्न किया-**विवाह क्यों करना?** क्योंकि इससे स्त्री-पुरुष को बंधन में पड़कर बहुत संकोच करना और दुःख भोगना पड़ता है, इसलिए जिसके साथ जिसकी प्रीति हो तब तक वे मिले रहें, जब प्रीति छूट जाये तो छोड़ देवें।

महर्षि ने उत्तर दिया-यह पशु-पक्षियों का व्यवहार, मनुष्यों का नहीं। जो मनुष्यों में विवाह का नियम न रहे तो गृहस्थाश्रम के अच्छे-अच्छे व्यवहार सब नष्ट-भ्रष्ट हो जायें, कोई किसी की सेवा भी न करे। और महाव्यभिचार बढ़कर सब रोगी, निर्बल और अल्पायु होकर शीघ्र-शीघ्र मर जायें। कोई किसी से भय व लज्जा न करे। वृद्धावस्था में कोई किसी की सेवा भी नहीं करे और महाव्यभिचार बढ़कर सब रोगी निर्बल और अल्पायु होकर कुलों के कुल नष्ट हो जावें। कोई किसी के पदार्थों का स्वामी वा दायभागी भी न हो सके और न किसी का किसी पदार्थ पर दीर्घकालपर्यन्त स्वत्व रहे। इत्यादि दोषों के निवारणार्थ विवाह ही होना सर्वथा योग्य है। (सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास)

विवाह शब्द का अर्थ है-विवहनार्थ (विविध कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के पालन हेतु) दो जीवनों और दो आत्माओं का आजीवन अभिन्न मिलन, जहाँ दोनों मिलकर परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की उन्नति में अपना योगदान करेंगे और लोक व परलोक की सु-साधना करेंगे।

ब्रह्मचर्याश्रम की साधना पूर्ण कर सुयोग्य बन जाने पर 25 वर्ष के नवयुवक एवं 20 वर्ष की युवती का विवाह होना श्रेष्ठ बतलाया है। विवाह-सम्बन्ध तय होने से पूर्व केवल चर्मनेत्रों से देखकर ही नहीं, बल्कि ज्ञान-नेत्रों से वर एवं कन्या के वंश, रूप, गुण, शील, स्वभाव एवं चरित्र की परख करके तथा दोनों की सहर्ष सहमति एवं स्वीकृति होना आवश्यक है।

वैदिक रीति से विवाह होने पर वर एवं वधू दोनों यज्ञवेदी

पर बैठकर स्वयं मंत्र बोलकर प्रतिज्ञा करते हैं।

ओ३म् समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वां सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ।।

ऋग्वेद:10.85.47

अर्थ–हे (विश्वे देवा:) इस यज्ञशाला में बैठे हुए विद्वान् लोगों! आप हम दोनों की निश्चय करके जानें कि हम अपनी प्रसन्नता पूर्वक गृहस्थाश्रम में एकत्र रहने के लिए एक–दूसरे को स्वीकार करते हैं कि हमारे दोनों के हृदय जल के समान शांत और मिले हुए रहेंगे। जैसे धारण करने हारा परमात्मा सब में मिला हुआ, सब जगत् को धारण करता है, वैसे हम दोनों एक दूसरे को धारण करेंगे। जैसे उपदेश करने हारा श्रोताओं से प्रीति करता है, वैसे हमारे दोनों की आत्मा एक दूसरे के साथ दृढ़–प्रेम को धारण करें। वैदिक संस्कृति में तलाक को कोई स्थान नहीं है।

विवाह संस्कार के पश्चात् वेदमाता कुलवधू को आशीर्वाद दे रही है।

सम्राज्ञी एधि श्वसुरेषु सम्राज्ञी उत देवृषु।
नानन्दुः सम्राज्ञी एधि सम्राज्ञी उत श्वश्र्वाः।।

अथर्व० : 14.1.44

हे कुलवधू! तू जिस नवीन घर में जाने वाली है, तू वहाँ की सम्राज्ञी (महारानी) है वहाँ तेरा राज्य होगा। तेरे श्वसुर, देवर, ननदें और सास तुझे सम्राज्ञी समझेंगे।

उपर्युक्त आशीर्वाद को सार्थक करने के लिए, महारानी बनने के लिए वेद माता के निम्न आदेश का पालन करना आवश्यक है।

सुमंगली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शम्भूः।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान्।।

अथर्व० : 14.2.26

हे बेटी! तू गृहस्थों की कल्याणकारिणी, तारने वाली, पति के लिए सु–सेवाकारिणी, सुखयित्री, श्वसुर के लिए शान्तिकर्त्री

तथा सास के लिए सुखदायिनी होकर ससुराल-गृह में प्रवेश कर।

निम्न वेदमंत्र में नारियों की शील-मर्यादा एवं मानव समाज में उनकी उच्चतम स्थिति का चित्रण किया है।

अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥

ऋग्वेदः 8.33.19

स्त्री सृष्टि की ब्रह्मा है। लज्जा और सुशीलता नारी का सर्वोत्कृष्ट भूषण है। नीचे दृष्टि रखना, संतर चाल चलना, अपने अंगों को ढंके रखना चरित्र रक्षण का अमोघ विज्ञान है।

स्त्री गृह, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की ब्रह्मा है। मानव की जन्मदात्री, पालनकर्त्री एवं शिक्षिका है। यदि स्त्री का अपना जीवन संयम, सुशीलता, लज्जा, पवित्रता आदि सद्गुणों से युक्त होगा तो उसकी संतान भी शुद्ध, संयमी, धर्मात्मा, कर्त्तव्यपरायण एवं चरित्रवान् होंगी। यदि ब्रह्मा, अक्षम, अबोध और अज्ञानी है तो उसकी रचना भी त्रुटिपूर्ण होगी।

संतान के निर्माण में सर्वप्रथम स्थान माता का तथा दूसरा स्थान पिता का है। माता संस्कारदायिनी है और पिता स्वभावदाता। प्रत्येक बालक संस्कार माता से और स्वभाव पिता से ग्रहण करता है। संस्कार-विज्ञान (संस्कारविधि) और स्वभाव-विज्ञान से विज्ञ माता पिता ही अपनी सतानों को श्रेष्ठ-दिव्यगुणी बना सकते हैं। वैदिक संस्कारों से मानव नर से नारायण बनाया जा सकता है।

मानव की उत्पत्ति कैसे? इस सम्बन्ध में महर्षि ऐतरेय ने कहा है:

पुरुषे ह वै आदितः गर्भः भवति।

ऐतरेयोपनिषद्: 2.1

कहने को तो स्त्री गर्भ धारण करती है, किन्तु आदि में पुरुष ही गर्भ धारण करता है, क्योंकि पुरुष के सभी अंगों से तेज इकट्ठा होकर वीर्य बनता है। पिता के जैसे आचार, विचार, आहार, विहार,

चिंतन और संकल्प होगा, उन्हीं विचारों से युक्त जीवात्मा का प्रवेश प्राणद्वार से उसके मन में होता है, मन से उसके वीर्य में, तत्पश्चात् गर्भाधान के समय स्त्री के गर्भाशय में प्रवेश होता है।

गर्भाशय में वीर्य का आधान उतना ही पवित्र है, जितना यज्ञवेदी में अग्नि का आधान। गर्भाधान के समय पति-पत्नी का जैसा चिंतन प्रेषण और सेचन होता है, वैसे ही अमिट संस्कारों से युक्त गर्भस्थ जीव होगा। बच्चा माता-पिता के विचारों, संस्कारों एवं कर्मों का फल है। जैसा बीज व खेत होगा, वैसी ही फसल उगेगी।

वैदिक संस्कृति गर्भाधान को एक पवित्र यज्ञ मानती है। यह प्रथम संस्कार है, जो मानव निर्माण की नींव है। गर्भाधान-संस्कार में विनियुक्त वेद-मंत्रों से यज्ञवेदी में जो आहुतियाँ दी जाती हैं और जो क्रियाएँ की जाती हैं उनमें गर्भाधान के गूढ़ रहस्य छिपे हुए हैं। वैदिक संस्कृति में सन्तान की कामना के अतिरिक्त मिलन को व्यभिचार कहा है तथा गर्भावस्था में कामचार, गर्भस्थ बालक, बालिका के साथ व्यभिचार करना कहा है। निरुद्देश्य कामसेवन मानवाचार नहीं, पशु-आचार है। संस्कार-विज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण ही अनिच्छित और अवांछित भ्रष्ट संतानें होकर संसार को नरकधाम बना रही हैं। गम्भीरता से विचार करें।

माता निर्माता भवति–गर्भिणी जिस प्रकार के बालक की माँ बनना चाहती है, उसे 10 माह तक उसी प्रकार के चित्रों का दर्शन, साहित्य का स्वाध्याय, सात्विक आहार-विहार करना चाहिए तथा सदैव प्रसन्नचित्त रहना चाहिए। तीसरे माह शिशु के शारीरिक विकास के लिए पुंसवन संस्कार, छठे माह मानसिक विकास के लिए सीमन्तोन्नयन संस्कार तथा जन्म होने पर जातकर्म संस्कार करना चाहिए। इसके बाद नामकरण संस्कार के समय बच्चे को कोई सार्थक अच्छा नाम रखना चाहिए। यथा नाम तथा गुण का स्मरण रक्खें। आगे के अन्य संस्कार भी यथासमय अवश्य करें।

पुत्र व पुत्री विज्ञान–पुत्र की कामना वाले वजिर्त तिथियाँ,

छोड़कर शुक्ल पक्ष में ऋतुकाल से छठी, आठवीं, दसवीं, बारहवीं, चौदहवीं एवं सोलहवीं रात्रि में गर्भाधान करें। उस समय पुरुष का दाहिना स्वर तथा स्त्री का बायाँ स्वर चलता हो। बाँई करवट लेटने से दाहिना स्वर तथा दाँयी करवट लेटे रहने से बायाँ स्वर चलने लगता है। पुत्री की कामना रखने वाले सातवीं, नौवीं, ग्यारहवीं, तेरहवीं व पन्द्रहवीं रात्रि में मिलें।

वर्जित तिथियाँ–रजोदर्शन से प्रथम चार रात्रि और ग्यारहवीं व तेरहवीं रात्रि। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या तथा पूर्णमासी भी वर्जित है। इनके अतिरिक्त ग्रहण समय, संक्रान्ति, दिन में, सन्ध्या समय, माता-पिता की मृत्युतिथि भी वर्जित मानी गई है। इन तिथियों में गर्भ स्थिति हो जाने से उनकी संतानें, अल्पायु, रोगी, दुराचारी, आचारभ्रष्ट राक्षसी स्वभाव वाली होंगी।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार पुत्रियों के लिए पुरुष में y क्रोमोसोम्स का उपलब्ध होना आवश्यक है। स्त्री में केवल x क्रोमोसोम्स ही होते हैं पुरुष में x और y दोनों होते हैं। शुक्ल पक्ष में पुरुष में y क्रोमोसोम्स तथा कृष्ण पक्ष में x रहते हैं। पुरुष के y तथा स्त्री के x क्रोमोसोम्स के मिलन से ही पुत्र उत्पन्न होता है। जिनके केवल पुत्रियाँ ही पुत्रियाँ होती हैं, इसके लिए पुरुष ही पूर्ण रूप से जिम्मेदार है, स्त्री नहीं।

श्रेष्ठ एवं मनचाही संतान प्राप्त करने के लिए इस विज्ञान को भली-भाँति समझ कर प्रयत्न करना आवश्यक है। इसके लिए निम्न पुस्तकें अवश्य पढ़ें।

1. क्या मनचाही संतान प्राप्त हो सकती है?– लेखक श्री यशपाल जी आर्य, प्राप्ति स्थान वैदिक साधन आश्रम तपोवन पो॰ रायपुर जिला देहरादून, (उत्तराखण्ड) पिन–248008

2. संस्कारचन्द्रिका व ३. सत्यार्थप्रकाश। प्राप्तिस्थान–विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द 4408, नई सड़क, दिल्ली-6

हे मातृशक्ति! उठो, जागो! परमात्मा द्वारा दिये गये अपने सर्वोच्च

सृष्टि की ब्रह्मा पद को प्राप्त होकर राम, कृष्ण, चाणक्य, दयानन्द, प्रताप, शिवा, भामाशाह, सुभाष, सीता, सावित्री, देवकी, द्रौपदी, कुंती, लक्ष्मीबाई जैसी सन्तानें प्रदान करके, विनाश की ओर जा रहे विश्व को बचाकर 21 वीं सदी में नवयुग का निर्माण करके संसार को स्वर्गधाम बनाओ। यह सामर्थ्य प्रभु ने केवल तुम्हें ही दिया है।

राजर्षि मनु ने समाज में तुम्हारा स्थान पुरुष से एक हजार गुना ऊँचा बतलाया है। समान अधिकार एवं सौन्दर्य प्रतियोगिताओं की होड़ में पुरुषों के हाथ का खिलौना बनना छोड़कर सच्ची आर्य-वीरांगना बनकर संसार का नेतृत्व करो। असली सिंहवाहिनी (वीर पुत्रों की माँ) बनकर दुष्टों व पापियों का विनाश कर दो। तुम्हें कोई कुदृष्टि से देखने, गर्भ में कत्ल करने वा जिन्दा जलाने का साहस भी न कर सके। आज का पुरुष यदि शैतान या दानव है, तो इसका मूल कारण यही है कि नारी ने उसे संत बनाने की चिंता नहीं की। बच्चे को संत, महात्मा, ऋषि, राजा, महाराजा, अथवा चोर, डाकू, दानव बनाना आपके हाथ में है। बस आवश्यकता है केवल वैदिक गृहस्थ-विज्ञान एवं संस्कार-विज्ञान को भली-भाँति समझकर आचरण में लाने की।

नीचे कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं इन पर विचार करें।

(1) राम-लक्ष्मण जैसे पुत्रों को प्राप्त करने के लिए महाराजा दशरथ ने वैदिक रीति से श्रृंगी ऋषि के पौरोहित्य में पुत्रेष्टि यज्ञ किया था।

(2) रावण— पुलस्तय ऋषि का पोता और विश्रवा का बेटा नित्य-प्रति वेदपाठ व यज्ञ करता था। फिर वह शराबी, मांसाहारी व पराई स्त्री का अपहरणकर्ता कैसे बना?

भारत से वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिए पुलस्त्य ऋषि आस्ट्रेलिया गये। वहाँ के राजा तृणबिन्दु की पुत्री के प्रेमजाल में फँसकर उससे विवाह कर लिया। उनका बेटा हुआ विश्रवा और

विश्रवा से रावण जो वैदिक (आर्य) संस्कृति एवम् अवैदिक (अनार्य) संस्कृति का मिश्रण हुआ। वेदपाठ व यज्ञ करने के संस्कार तो अपने दादा के और दूसरे अनार्य संस्कार अपनी माता से प्राप्त किये थे। जैसा बीज व खेत होगा वैसी ही फ़सल उगेगी।

(3) कंस—कंस अपने असली पिता उग्रसेन का अंश नहीं था। दुर्मिल नाम के किसी शक्तिशाली व्यक्ति ने उसकी माँ से व्यभिचार किया था। माँ ने गर्भपात को पाप समझ कर,कंस को जन्म तो दे दिया, किन्तु वह उसे राजा बनाना नहीं चाहती थी। कंस अपने ससुर जरासन्ध की शक्ति के भरोसे पिता को कैद में डालकर स्वयं राजा बना था। जिसके कारण समस्त यदुवंशी उसके विरुद्ध हो गये, किन्तु जरासन्ध का मुकाबला करने का साहस उनमें नहीं था।

(4) श्रीकृष्ण-कंस के अत्याचारों से मुक्ति पाने के लिए कंस की चचेरी बहिन देवकी व बहनोई वसुदेव ने संकल्प लिया कि हमारी सन्तान कंस का विनाश करने वाली हो। इसके लिए दोनों ने वर्षों तपस्या करके श्रीकृष्ण जैसे युग महापुरुष को जन्म दिया।

(5) नेपोलियन-जब अपनी माता के पेट में था तब उसकी माँ सेनाओं की परेड देखती रहती थी और सैनिक गीत सुनकर प्रफुल्लित हो जाती थी। गर्भावस्था में पड़े इन संस्कारों ने उसे एक महान् योद्धा बना दिया।

(6) शंकराचार्य—दक्षिण भारत में शिवगुरु नाम के एक तपस्वी विद्वान ब्राह्मण थे। देश में बौद्ध धर्म का बोलबाला था। वेद अपमानित हो रहे थे व वैदिक धर्म को मिटाया जा रहा था। शिवगुरु बड़े चिन्तित हुए, विचार किया मेरे ब्राह्मणत्व का क्या अर्थ है, यदि मैं वेद की रक्षा न कर सका। जब वेद नहीं रहेगा तो धर्म कहाँ रहेगा? मानवता कहाँ रहेगी? अनेक विद्वानों व तपस्वियों को बुलाकर वेद-रक्षा का विचार किया गया, पन्तु कोई हल न निकल सका। पतिदेव को चिन्ताग्रस्त देखकर पतिव्रता

विदुषी धर्मपत्नी ने आश्वासन दिया कि जिस कार्य को ये विद्वान् लोग असम्भव कहते हैं, उसे हम संकल्पवान् होकर सम्भव करेंगे। इतिहास साक्षी है। उन्होंने जगदगुरु शंकराचार्य को जन्म दिया, जिन्होंने केवल 32 वर्ष की अल्पायु में भारत वर्ष से बौद्ध धर्म को उखाड़ कर वैदिक धर्म की रक्षा की।

(7) महारानी मदालसा सदाचारी, धर्मात्मा, सत्यनिष्ठ राजा ऋतुध्वज की धर्मपत्नी थी। महारानी ने वैदिक संस्कारों द्वारा अपने तीन बेटों को ऋषि बना दिया। महाराजा को चिंता हुई। भविष्य में इस राज्य का कौन संभालेगा और आगे वंश कैसे चलेगा? पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली मदालसा ने पतिदेव को आश्वासन दिया–राजन् चिंता न करें चौथा बेटा श्रेष्ठ क्षात्र गुणों से सम्पन्न ही दूँगी। गुरुकुल की शिक्षा पूर्ण कर जब चौथा बेटा स्नातक बना तब उसी दिन उसके तीनों संन्यासी बड़े भाई उसे भी संन्यासी बनाकर अपने साथ ले जाने का प्रयास करने लगे परन्तु उसने उनके प्रस्ताव को अस्वीकार करके उन्हें शास्त्रार्थ में पराजित करके, गुरुकुल से विदा लेकर सीधे राजमहल पहुँचकर माता–पिता के चरणों में प्रणाम किया। जिसे प्राप्त कर दोनों अति प्रसन्न हुए।

तीन दिन पश्चात् महारानी के तीनों संन्यासी बेटों ने भी राजमहल पहुँचकर माता के चरणों में प्रणाम किया और माता से निवेदन किया–माता जी! हम आपसे एक प्रश्न का समाधान करने आये हैं? प्रश्न है जिस दिन हमारा यह छोटा भाई स्नातक बना, उसी दिन हम ने गुरुकुल जाकर इसे भी संन्यास ग्रहण करके अपने साथ ले जाने का प्रयास किया, परन्तु इसने हमारा प्रस्ताव अस्वीकार करने के साथ ही शास्त्रार्थ में भी हमें परास्त कर दिया। इसका क्या कारण है?

महारानी ने कहा, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर कल दूँगी, आज तुम इस कमरे में निवास करो तथा इसमें लगे चित्रों का अवलोकन करो और इसमें रखे साहित्य का स्वाध्याय करो। अगले दिन प्रश्न

का उत्तर पूछने पर माता जी ने उनसे कहा–आज तुम इस दूसरे कमरे में विश्राम करो तथा इसमें लगे चित्रों का दर्शन एवं साहित्य का अध्ययन करो। अगले दिन प्रश्न का उत्तर मालूम करने पर महारानी बोलीं...बेटों! तुम्हारी प्रश्न का उत्तर तो मैं दे चुकी, परन्तु तुम समझे नहीं, अब मैं तुम्हें समझाती हूँ। जब–जब तुम तीनों मेरे पेट में थे, तब मेरा निवास प्रथम कक्ष में था। मैं नित्य प्रति इसमें लगे महापुरुषों व ऋषियों के चित्रों का दर्शन किया करती थी और इसमें रखे साहित्य का स्वाध्याय किया करती थी तथा यह लोरी गाया करती थी–**शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरञ्जनोऽसि, संसारमायापरिवर्जितोऽसि।** इसी कारण तुम तीनों ऋषि बने। संसार की कोई भी शक्ति तुम्हें ऋषि बनने से नहीं रोक सकती थी। और जब यह तुम्हारा छोटा भाई पेट में था तब मेरा निवास इस दूसरे कक्ष में था। तब मैं इसमें लगे क्षत्रिय राजाओं और वीरों के चित्रों का दर्शन किया करती थी तथा इसमें रखे साहित्य का व वीरों की गाथाएँ पढ़ा करती थी। इसी कारण यह राजधर्म का पालन करने वाला बना और तुम्हें शास्त्रार्थ में हराया। तीनों संन्यासी बेटे संतुष्ट होकर माता जी से विदा लेकर चले गये और आजीवन समाज एवं राष्ट्र की सेवा में लगे रहे। इस सम्बन्ध में सामवेद के निम्न मंत्र पर प्रत्येक माता विचार करे।

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे।
सीदन्नृतस्य योनिमा।।

सामः 1396

बालक का निर्माण मातृ गर्भ में ही होता है। उस समय माता की एक–एक क्रिया बच्चे को प्रभावित कर रही होती है। माता के गर्भ में ही बालक पितुः–पिता=पिता का पिता, अर्थात् ऊँचे से ऊँचा ज्ञानी व संयमी बन सकता है। संस्कृत साहित्य में ज्ञानी को पिता कहते हैं।

एकोऽपि गुणवान पुत्रो निर्गुणैश्च शतवरः।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च ताराः सहस्त्रशः।।

सैंकड़ों गुण रहित पुत्रों की अपेक्षा एक ही गुणी पुत्र श्रेष्ठ है। एक ही चन्द्रमा अंधकार को नष्ट कर देता है। सहस्त्रों तारे नहीं।।

जिनके मुख मण्डल पर आभा, शरीर में बल, मन में प्रचण्ड इच्छाशक्ति और अपार उत्साह, बुद्धि में वेद का पाण्डित्य, जीवन में स्वावलम्बन और हृदय में ऋषि गाथायें अंकित हों तथा जिन्हें देखकर महापुरुषों की स्मृतियाँ झंकृत हो उठें।

स्वरूप एवं सुसंस्कृत बच्चे राष्ट्र की निधि हैं और वही राष्ट्र के निर्माता हैं।

चित्र-दर्शन, श्रवण एवं स्वाध्याय के अमिट संस्कार गर्भस्थ शिशु के मन मस्तिष्क पर पड़ते हैं। मातृशक्ति पर पड़ते हैं। मातृशक्ति इस रहस्य को हृदयंगम कर ले। दूरदर्शन के अश्लील, वीभत्स, घृणित दृश्यों एवं अश्लील गीतों के श्रवण से अपने को अलग रखें। इसके कारण वर्तमान पीढ़ी बिगड़ रही है, दानव बन रही है। दूरदर्शन से विश्व का बहुत बड़ा सुधार हो सकता है यदि इसका प्रबन्ध संचालन वैदिक विद्वानों आचार्यों को सौंप दिया जाये।

पुरुष वर्ग भी मनु महाराज के इन वचनों को सदैव स्मरण रखे।

यत्र नार्युस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

जिन परिवारों में नारियों की पूजा (स्नेह, सौहार्द्र एवं समादर के साथ सत्कार व सम्मान) होती है, वहाँ देवता (श्रेष्ठ दिव्य गुणवाली सन्तानें जन्म लेती हैं) निवास करते हैं। तथा इसके विपरीत जिन परिवारों में उनके साथ कठोरता, क्रूरता का व्यवहार, अपमान व अनादर होता है, और वह शोक व दुःख के आँसू बहाती हैं, वहाँ राक्षसी वृत्ति की दुष्ट सन्तानें जन्म लेकर उस कुल को नष्ट-भ्रष्ट कर देती हैं।

नारी नारायण की प्रतिमा है, उसका सम्मान कर।

हे मानव की जन्मदात्री, निर्माणकर्त्री एवं प्रथम आचार्या। वैदिक संस्कृति संसार की सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है, इसे अपनाकर, अपने

आचरण में लाकर, अपने दिव्य स्वरूप, अपनी क्षमताओं, अपने कर्त्तव्यों को समझकर **सृष्टि की ब्रह्मा** बनकर वेदमाता के आदेश **जनया दैव्य जन्म्** का पालन करके श्रेष्ठ दिव्य गुणों से युक्त पुत्रों व पुत्रियों को जन्म देकर अपने परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व का उद्धार करो। नवयुग का निर्माण करके संसार को स्वर्गधाम बनाओ। आज संसार को **मिस इण्डिया या मिस यूनिवर्स** की आवश्यकता नहीं, बल्कि हजारों लाखों मदालसाओं एवं वीरांगना दुर्गाओं की आवश्यकता है।

महर्षि दयानन्द के इस संदेश को स्मरण रखो।

संसार के लोगों यदि जीवन में सुख, शान्ति व आनन्द चाहते हो तो **वेदों की ओर लौटो** अर्थात् वेदों की शिक्षाओं को अपने आचरण में लाओ।

Come back to Vedas

–कृष्णऔतार, बढ़ापुर

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् इन्द्र क्रतुनं आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षणी अस्मिन पुरूहूत यामनि ज्योतिरशीमहि।।

अर्थववेद: 20.79.1

हे प्रभो! जैसे पिता अपनी संतान को अपना समस्त ऐश्वर्य प्रदान कर देता है। हे दयालु पिता! आप हम सबको भी सम्पूर्ण ऐश्वर्य एवं ब्रह्मतेज से तेजस्वी–वर्चस्वी बना दो। प्रभो! हमें ऐसा सद्विवेक सुस्वास्थ्य व सद्ज्ञान दो, जिससे हम सब जीव आनन्दमय जीवन यापन करते हुए आपकी निर्मल पावन ज्योति को अपने हृदय मन्दिर में देख सकें। हे ईश! अब तो हमारे मन में ऐसा दिव्य प्रकाश भर दो, जिससे समस्त रोग–शोक, संताप व अज्ञान मिट जायें, सर्वत्र तुम्हारा ही दर्शन हो।

नोट– प्रत्येक विद्यालय में इस गृहस्थ विज्ञान की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए।

नारी समाज की समस्यायें
और
उनका समाधान

भारती का अतीत इस सत्य का साक्षी है कि भारतीय नारी विश्व में विदुषी (ऋषिका), सम्राज्ञी एवं वीरांगना शब्दों से सम्बोधित एवं प्रतिष्ठित रही है।

आज वह अबला और असहाय कैसे बन गई?

मध्ययुग में वैदिक संस्कृति का ह्रास होने से तथा वर्तमान काल में अवैदिक, अनार्य संस्कृति के प्रचार-प्रसार तथा सिनेमा व दूरदर्शन के माध्यम से अश्लील साहित्य, दृश्यों, गीतों तथा पश्चिम की भोगवादी आँधी के कारण धरती के स्वर्ग गृहस्थाश्रम उजड़ रहे हैं, परिवार टूट रहे हैं, संसार नरक-धाम बनता जा रहा है।

वैदिक काल में सर्वोच्च पद को प्राप्त नारी मानव **सृष्टि की ब्रह्मा**, परिवार की सम्राज्ञी व गृहलक्ष्मी को आज गर्भ में ही कत्ल किया जा रहा है। हजारों देवियाँ दहेज, अपहरण, बलात्कार, तलाक आदि अनेक कारणों से विवश होकर आत्महत्यायें कर रही हैं। आज की नारी विज्ञापन, प्रदर्शन एवं भोग की सामग्री बन गई है, तथा मिस इन्डिया, मिस यूनिवर्स, मिस अग्रवाल बनने में अपना गौरव समझ रही है। स्वयं ही पुरुषों के हाथ का खिलौना बन रही है। संस्कृति का अर्थ नाचना व गाना ही समझा जाने लगा है।

वदिक संस्कृति के लोप हो जाने तथा पुरुष प्रधान समाज के कारण आदि शंकराचार्य ने स्त्री को नरक का द्वार बतलाया, अन्य

धर्माचार्यों ने **स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम** की घोषणा करके नारी व शूद्रों को वेद पढ़ने के अधिकार से ही वंचित कर दिया। विधवा हो जाने पर स्त्री को पति के शव के साथ ही जिन्दा जलाने की व्यवस्था दी गई। तुलसीदास जैसे कवियों ने भी नारी को अधम व ताड़न की अधिकारी कहा। बाइबल वालों ने स्त्री में आत्मा ही नहीं मानी और कुरान वालों ने पैर की जूती बतलाया तथा एक पुरुष को चार-चार पत्नियाँ रखने व जब चाहे तलाक देने का विधान बनाया, इत्यादि।

उपर्युक्त सभी समस्याओं का एकमात्र समाधान यही है कि नारी वेद-ज्ञान में अपने स्वरूप, अधिकार एवं कर्तव्यों को भली-भाँति समझ कर वैदिक संस्कृति के अनुसार आचरण करे। महर्षि दयानन्द ने **यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभयः** यजुर्वेद के 26-2 मंत्र का प्रमाण देकर स्त्री, शूद्र, आर्य-अनार्य समस्त मानवों को वेद पढ़ने का अधिकार दिलाया तथा मानव को श्रेष्ठ दिव्य बनाने के लिए 16 वैदिक संस्कारों का विधान **संस्कार-विधि** पुस्तक में और सत्य व असत्य की परख करके असत्य को छोड़कर सत्य पथ का अनुगामी बनने के लिए, वैदिक तथा अवैदिक संस्कृति का परिचय अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में दिया है। इन दोनों पुस्तकों को पढ़कर लाखों, स्त्री व पुरुषों के जीवन महान् एवं यशस्वी बन गये हैं। महर्षि ने विधवा-विवाह को वेद द्वारा प्रमाणित करके लाखों महिलाओं को नवजीवन एवं सम्मान दिलाया।

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

परम धर्म को छोड़ देने अथवा उससे वंचित कर दिए जाने के कारण ही उपर्युक्त समस्यायें उत्पन्न हुई हैं तथा उनका समाधान भी परमधर्म को स्वीकार करके तद्नुकूल आचरण करने से ही होगा। अन्य कोई मार्ग है ही नहीं।

स्त्री-नारी-महिला शब्दों के अर्थ

स्त्री स्तृञ धातु, जिससे स्त्री शब्द की उत्पत्ति हुई है, का अर्थ है—आच्छादन, ढकना, फैलाना, व्यापना, ढांपकर रक्षा करना। स्त्री पुष्पलता के समान फैलने वाली (वंश को बढ़ाने वाली), शीतल छाया के समान आच्छादन करके ताप-संताप से रक्षा करने वाली है।

नारी का अर्थ है सुनयन करने वाली, नेतृत्व करने वाली, नारी-नर की सुनेत्री है, सुनयन करने वाली है।

महिला शब्द मही + इला से मिलकर बना है। मही का अर्थ है—माता, मातृभूमि, महान् और पूज्या। **इला** का अर्थ भी पृथिवी है। महान् होने से ही यह पृथिवी मही है और सुगन्धमयी होने से पूज्या है। इला का एक अर्थ वाणी-वेदवाणी भी है।

इस प्रकार जो महिला अपने जीवन में वेदवाणी द्वारा महान् गुणों को धारण कर लेगी वह निश्चित रूप से महान एवं पूज्या बन जायेगी। ऐसी मातओं के पुत्र व पुत्रियाँ उनकी पूजा व सत्कार किसी कवि के इन शब्दों में करेंगे—

उसको नहीं देखा हमने, पर इसकी जरूरत क्या होगी?
ओ माँ। तेरी सूरत से अलग भगवान की सूरत क्या होगी।।
इन्सां तो क्या? देवता भी पले हैं, आँचल में तेरे।
स्वर्ग इसी दुनियाँ में है, कदमों के तले तेरे।।

वेद में नारी

भूमिर्माता द्यौर्नः पिता

अर्थव॰ 6.120.2

समाज में पुरुष और स्त्री का वही कार्य है जो भूमण्डल में पृथिवी और सूर्य का। सूर्य पृथिवी के बिना कोई सृजन नहीं कर सकता।

वेद में स्त्री के लिए उषा शब्द का प्रयोग हुआ है। **उषा वै**

सूर्यस्य पुरोगवी उषा सूर्य के आगे चलने वाली है। पुरुष सूर्य है और स्त्री पुरुष की पुरोगवी उषा है। तभी तो विवाह संस्कार में यज्ञवेदी की परिक्रमा करते हुए वधू आगे-आगे चलती है और वर पीछे-पीछे।

'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ'

स्त्री-गृह, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की ब्रह्मा है। मानव की जन्मदात्री, निर्माणकर्त्री, शिक्षिका तथा संचालिका है।

यथा ब्रह्मा तथा रचना। यदि स्त्री का अपना जीवन श्रद्धा, लज्जा, संयम, धैर्य, त्याग, स्नेह, सुशीलता, पवित्रता आदि श्रेष्ठ गुणों से युक्त होगा तो उसकी सन्तान भी शुद्ध, संयमी, धर्मात्मा आस्तिक एवं कर्तव्यपरायण होगी, और इसके विपरीत यदि नारी अक्षम, अबोध, अज्ञानी, असंयमी है तो उसकी रचना भी त्रुटिपूर्ण होगी। अतः जिस राष्ट्र की नारी आदर्श ब्रह्मा और शिक्षिका होगी, वही राष्ट्र आदर्श बनेगा।

आर्य सभ्यता में नारी का सतीत्व सर्वोपरि है, तथा सतीत्व-रक्षा का अचूक और श्रेष्ठ उपाय है, नारी का स्वयं सबला और सशस्त्रा होना। महिला सम्मेलन करके, अधिकार माँगने, पुरुषों के आगे गिड़गिड़ाने से कुछ नहीं मिलने वाला है। इसके लिए वेदमाता का दिव्य संदेश नारी समाज ध्यान से सुने, समझे और फिर आचरण/व्यवहार में लाये, तभी उसकी समस्याओं का समाधान हो पायेगा।

आलाक्ता या रूरूशीष्णर्यथो यस्या अयो मुखम्।
इदं पर्जन्यरेतस इष्टवै देव्यै बृहन्नमः॥

ऋग्वेदः 6.75.15

भावार्थ—नारियाँ सुन्दर, सुशीला हों, पर साथ ही वीरांगना, सबला और सशस्त्रा भी हों। सतीत्व पर वार होने पर भयंकर विकराला, विष से बुझी कटारियाँ हों तथा राष्ट्र पर संकट आने पर शस्त्रों और शरों की वर्षा करने वाली दुर्गा, लक्ष्मीबाई भी हों।

समाज में ऐसी नारियों का सर्वाधिक सम्मान होना चाहिए।

राजपूत महिला किरणबाई ने मीना बाजार से अपहृत हो जाने पर साक्षात् दुर्गा बन कर बादशाह अकबर की छाती पर चढ़कर कटार तान दी थी और उसके प्राणों की भीख माँगने पर तथा भविष्य में मीना बाजार न लगाने का वचन लेकर उसे जीवनदान देकर इतिहास में अपना नाम अमर कर लिया। इसी प्रकार झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई ने राष्ट्ररक्षा के लिए साक्षात् दुर्गा बनकर अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए थे।

वैदिक संस्कृति में नारी का स्थान पुरुष से एक हजार गुना ऊँचा है, तथा उसका कार्यक्षेत्र गृह है। अपने घर की सुव्यवस्था करना, दिव्यगुणी सन्तति को जन्म देकर उनकों सुसंस्कारों से युक्त करके उनका चरित्र निर्माण करना प्रमुख दायित्व है। गृहस्थ रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं स्त्री व पुरुष। यदि दोनों ही अपनी-अपनी लोक (मर्यादा) में चलेंगे तभी घर स्वर्गधाम बनेगा। दोनों के ही सर्विस या धनोपार्जन में लग जाने से अनेक समस्यायें उत्पन्न होंगी। सन्तानों को आयाओं पर छोड़कर सुयोग्य नहीं बनाया जा सकता।

वैदिक संस्कृति में नारी शक्ति की अधिष्ठात्री दुर्गा, धन की लक्ष्मी तथा ज्ञान की सरस्वती के रूप में मानी गई है। कन्यायें साक्षात् दुर्गा हैं। वही विवाह के पश्चात् गृहलक्ष्मी एवं सम्राज्ञी बन जाती हैं तथा प्रौढ़ावस्था में ज्ञान व अनुभवों से सम्पन्न होकर सरस्वती बन जाती हैं। हमने आज्ञनवश इनकी कल्पित (फर्जी) मूर्तियाँ बनाकर पूजना आरम्भ करके उनके असली स्वरूप को भुला दिया।

विवाह से पूर्व कन्या दो हाथ वाली है, विवाह हो जाने पर चार भुजा और बेटा होनेपर छः भुजा तथा पुत्र-वधु आ जाने पर अष्टभुजाधारिणी तथा वीर पुत्रों-पौत्रों की माँ व दादी माँ बनकर सिंहवाहिनी बन जाती हैं।

जिस अष्टभुजाधारिणी व सिंह-वाहिनी दुर्गा माता की कल्पित

मूर्ति की हम पूजा करते हैं, वह किसी चित्रकार ने भारत माता के रूप में अपनी कल्पना के आधार पर एक चित्र बनाया है। राष्ट्र की सामाजिक व्यवस्था में उसके चारों अंगों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र सभी का सहयोग रहता है। राष्ट्र पर शत्रु का आक्रमण होने पर चारों वर्णों के दो-दो हाथ मिलाकर भारत माता अष्टभुजाधारिणी तथा चारों के सिंहसदृश वीर पुत्रों के सहयोग से सिंह वाहिनी बन जाती है। वाहिनी शब्द सेना के लिए भी प्रयोग होता है।

घर एक विश्वविद्यालय है।

संसार के महान् पुरुषों का प्रारम्भिक शिक्षण अपने घर में ही हुआ है। बच्चे की सर्वप्रथम आचार्या उसकी माता है। हमारा अपना घर ही संसार का लघु संस्करण है। जैसे परिवार के स्त्री-पुरुष होंगे, वैसा ही समाज बनेगा, जैसा समाज बनेगा, वैसा ही राष्ट्र होगा और जैसे राष्ट्र होंगे, वैसा ही विश्व होगा।

स्वामी विवेकानंद से किसी अमेरिकन महिला ने पूछा—स्वामी जी, आपने कौन से विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की है, मैं भी अपने एक बेटे को उसी में पढ़ाना चाहती हूँ। स्वामी जी ने उत्तर दिया—यह विश्वविद्यालय तो अब टूट चुका है। कौन सा था वह विश्वविद्यालय? यह पूछने पर स्वामी जी ने कहा—वह विश्व-विद्यालय था मेरी जन्मदात्री माँ जो अब इस संसार में नहीं है। **माता निर्माता भवति।**

गृहस्थ-विज्ञान

गृहस्थ विज्ञान संसार का सबसे बड़ा विज्ञान है, जिसकी सर्वथा उपेक्षा की जा रही है। इस विज्ञान को संस्कार चन्द्रिका पुस्तक से भली-भाँति समझकर आचरण में लाने पर मातायें बच्चे को सन्त, महात्मा, ऋषि, वीर, राजा अथवा चोर व डाकू जैसा चाहे

बना सकती हैं। विधाता ने यह सामर्थ्य नारी को ही दिया है। वीर अभिमन्यु ने माँ के पेट में ही चक्रव्यूह भेदन-क्रिया सीख ली थी। नेपोलियन की माता गर्भावस्था में नित्य सैनिक परेड देखती थी। अष्टावक्र ने गर्भकाल में ही वेदान्त की शिक्षा प्राप्त कर ली थी। महारानी मदालसा ने अपने तीन बेटों को ऋषि और चौथे को श्रेष्ठ राजा बना दिया था।

वैदिक विवाह

विवाह शब्द का अर्थ है-विवहनार्थ-विविध कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों के पालन हेतु दो आत्माओं और दो जीवनों का आजीवन अभिन्न मिलन। जहाँ दोनों मिलकर परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की उन्नति में अपना योगदान करेंगे तथा लोक व परलोक की सुसाधना करेंगे।

वैदिक विवाह में तलाक का कोई स्थान नहीं है। आजीवन साथ रहने का विधान है जैसे दो स्थानों का जल मिला देने पर संसार का बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी उन्हें अलग-अलग नहीं कर सकता है। यह है वैदिक विवाह की श्रेष्ठता एवं विशेषता। विवाह से पूर्व ही केवल चर्म नेत्रों से नहीं बल्कि ज्ञान नेत्रों से भी वर एवं कन्या के वशं, गुण, शील, स्वभाव, रूप-रंग, चरित्र आदि की परख कर लेनी आवश्यक है। केवल बाह्य रूप, रंग, कार-कोठी, पैसा, सर्विस आदि को प्राथमिकता नहीं देनी चाहिए। विवाह संस्कार में वैदिक रीति से वर एवं वधू स्वयं वेदमंत्र बोल कर उनके अर्थ समझकर प्रसन्नतापूर्वक आजीवन एक साथ रहने की प्रतिज्ञा करें।

आजकल विदेशियों की नकल करके जो प्रेम विवाह हो रहे हैं, उनमें से अधिकांश का 1-2 वर्ष के भीतर तलाक हो जाता है। और अब तो विदेशी में, यह मान कर कि जब विवाह का अन्त तलाक में होना ही है, तो क्यों न विवाह को ही बीच में

से निकाल दिया जाये, परिणामस्वरूप वहाँ हजारों स्त्री-पुरुष बिना विवाह किये ही साथ-साथ रह रहे हैं, जिसके कारण वहाँ की सरकारों के सामने उनके बच्चों के पालन-पोषण, शिक्षा व उत्तराधिकार जैसी समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। उनका गृहस्थ जीवन पशुओं जैसा बन गया है।

भारत में भी यह बीमारी तेजी से बढ़ रही है। दूरदर्शन व सिनेमा के माध्यम से विवाहेतर सम्बन्धों एवं बिना विवाह किये, बच्चे को जन्म देने का हवाला अब शान के साथ दिया जाने लगा है जो शीघ्र ही एक भयंकर त्रासदी की ओर देश को ले जायेगा।

वैदिक संस्कृति के अभाव में नारी ने अपने दिव्य स्वरूप, अपनी क्षमताओं, परिवार, समाज एवं राष्ट्र निर्माण में अपनी उज्जवल भूमिका को भुला दिया है। पुरुष जो उसी की कृति है, नारी को एक अभिशाप के रूप में चित्रित कर रहा है। आज का पुरुष यदि शैतान है तो इसका मूल कारण यही है कि नारी ने उसे सन्त बनाने की चिन्ता नहीं की। आज नारी ही नारी की शत्रु बन रही है। दहेज के कारण होने वाली अधिकांश हत्याओं तथा कन्याओं की भ्रूण हत्याओं एवं गर्भपात में मूल रूप से सास-ननदें ही दोषी पाई जाती हैं।

ऐ मातृशक्ति! वैदिक संस्कृति संसार की सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है। जैसे आत्मा के बिना शरीर निष्प्राण हो जाता है, उसी प्रकार अपनी संस्कृति के बिना आपका जीवन, परिवार, समाज व राष्ट्र निष्प्राण होकर अनेकों समस्याओं व संकटों से घिर गया है तथा विनाश के कगार पर खड़ा है।

हे मानव की जन्मदात्री व निर्मात्री माता! वैदिक संस्कृति को अपना कर **सृष्टि की ब्रह्मा** बनकर वेदमाता के आदेश **'जनया दैव्यं जन्म्'** का पालन करके दिव्य श्रेष्ठ गुणों से युक्त पुत्र व पुत्रियों को ही जन्म दो, तभी आपकी, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान होकर नवयुग-निर्माण होकर

संसार स्वर्गधाम बन पायेगा। आज संसार को मिस इन्डिया या मिस-यूनिवर्स की नहीं बल्कि हजारों लाखों मदालसाओं एवं दुर्गाओं की आवश्यकता है।

वैचारिक एवं सांस्कृतिक जागृति के लिए

(1) महिला जागरण मंचों की स्थापना—सुयोग्य एवं कर्मठ समाज-सेविका महिलायें प्रत्येक जनपद में महिला जागरण मंचों की स्थापना करके इसे अखिल भारतीय महिला जागरण मंच का रूप देकर फिर धीरे-धीरे देश के प्रत्येक नगर व ग्राम-ग्राम में मंच की शाखाओं का विस्तार करें तथा एक विशाल, सुदृढ़, सशक्त संगठन के रूप में खड़ा करें। यह सदैव स्मरण रक्खें कि संसार में सदा से ही शक्ति की पूजा होती आई है।

(2) संगठन की सुयोग्य कार्यकर्त्री घर-घर जाकर महिलाओं की समस्यायें समझकर उन्हें सद्‌परामर्श एवं उचित सहयोग प्रदान करें तथ वैदिक साहित्य, सत्यार्थ प्रकाश एवं संस्कार विधि पुस्तकें अल्प मूल्य में देकर पढ़ने की प्रेरणा दें।

(3) सह-शिक्षा का बहिष्कार करके, कन्याओं की शिक्षा का प्रबन्ध प्राइमरी स्तर से उच्च स्तर तक का अलग से कन्या गुरुकुल पद्धति के अनुसार किया जाये। वहीं छात्राओं को वैदिक संस्कृति, गृहस्थ-विज्ञान तथा आयुर्वेद की शिक्षा अनिवार्य रूप से दिलाई जाये, और साथ ही उन्हें वीरांगना बनाने का प्रशिक्षण भी दिलाया जाये।

(4) सौन्दर्य प्रतियोगिताओं का बहिष्कार करके जनपद स्तर पर वीरांगना शिविरों व प्रतियोगिताओं का आयोजन अवकाश के दिनों में कराया जाये।

(5) व्यापारिक विज्ञापनों व सिनेमा पोस्टरों पर किसी भी महिला का चित्र न छपने पाये, इसके लिए सरकार के माध्यम से व आन्दोलन चलाकर इसे बंद कराया जाये।

(6) दूरदर्शन व सिनेमा के अश्लील दृश्यों व गीतों पर सरकार द्वारा कानून बनाकर रोक लगाने का प्रबल अनुरोध किया जाये।

(7) शराब बंदी–शराब समस्त बुराईयों की जननी है। सरकार से समस्त भारत में इसे तुरंत बंद करने का प्रबल अनुरोध किया जाये।

(8) अपनी बेटियों के विवाह किसी दहेज–लोभी, शराबी व मांसाहारी असुर से भूलकर भी न करें।

(9) विवाह संस्कार वैदिक रीति से दिन में आडम्बर रहित व सादगी के साथ करें। सम्भव हो सके तो सामूहिक विवाह पद्धति के माध्यम से, जैसे गायत्री परिवार वाले और अग्रवाल सम्मेलन वाले कराते हैं, करायें।

(10) विवाह हो जाने पर प्रत्येक माता अपनी बेटी को सम्राज्ञी बनने एवं सुखी रहने के लिए वेदमाता का यह दिव्य उपदेश देकर ससुराल के लिए विदा किया करें।

सुमंगली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शं भूः।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान्।।

अथर्व॰: 14.2.26

अर्थः–हे बेटी। तू गृहस्थों की कल्याणकारिणी, तारने वाली, पति के लिए सु–सेवाकारिणी, सुखयित्री, श्वसुर के लिए शान्ति–कर्त्री तथा सास के लिए सुखदायिनी होकर ससुराल–गृह में प्रवेश कर।

देवियाँ देश की जाग जायें अगर,
युग स्वयं ही बदलता चला जायेगा।
पत्नियाँ सादगी साध पायें अगर,
पति स्वयं ही बदलता चला जायेगा।।

–कृष्णऔतार, बढ़ापुर

वर्तमान जगत् में संयुक्त परिवार की उपयोगिता

–डॉ॰ रामावतार अग्रवाल, रायपुर

परिवार क्या है?

मानव परिवार आदिम सृष्टि की वह संस्था है, जिसमें सुगन्धित जीवन के अनेक रंग-बिरंगे फूल खिलते हैं।

स्त्री-पुरुष, जब पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, माता-पिता, भ्राता-भगिनी, दादा-दादी, नाना-नानी, चाचा-चाची तथा ताऊ-ताई इत्यादि के रूप में जिस घर में निवास करते हैं, उसी घर को परिवार कहते हैं। ऐसे परिवार में सभी सम्बन्धी एक दूसरे के अनुकूल होकर प्रेम-भाव से सुख-शांति के साथ निवास करते हैं।

सुंदर व सुखी घर परिवार कैसा होना चाहिए। इस सम्बन्ध में वेदों का यह मत है कि जब पुत्र पिता का अनुगामी होकर माता के मन के अनुकूल आचरण करता है, और जब पत्नी, पति के प्रति मधुर एवं शांत वाणी में कथन करती है, तब ऐसा घर सुखी परिवार कहलाता है।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनः।
जाया-पत्ये मधुमतीं, वाचं वदतु शान्तिवाम॥

अथर्ववेदः 3.30.2

इसके अतिरिक्त जिस घर में भाई, भाई से द्वेष नहीं करता तथा बहन, बहन से ईर्ष्या द्वेष नहीं करती, और जिसमें परिवार के सभी सदस्य समान व्रत वाले होकर भद्र वाणी का प्रयोग करते हैं वही घर, घर है।

म्रा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारम् उतस्वसा।
सम्यंचः सव्रता-भूत्वा, वाचं वदत भद्रया॥

अथर्वः 3.30.3

परिवार उस संस्था का नाम है, जिससे सहयोग, समन्वय, प्रेम, मधुरता तथा आत्मीयता प्रस्तुत होती है। परिवार आत्मीय बंधनों अथवा सम्बन्धों का मधुर कोष है।

संसार में यदि कहीं पर सुख है या कहीं पर आनन्द है, तो वह उन घर-परिवारों में है, जहाँ सभी परिजन आत्मीय भाव से विश्राम करते हैं। घर में काम भी है, आराम भी है।

व्यक्ति अल्प या अकेला है, और अकेलेपन में सुख नहीं दुख है, मृत्यु है। छान्दोग्योपनिषद में यह कहा गया है कि उस वैयक्तिक जीवन में जो अल्पता का सूचक है, उसमें सुख नहीं है। सुख है व्यापकता (भूमा) अथवा पारिवारिक, सामाजिक या व्यापक जीवन में।

यो-वै भूमा तत्सुखम नाल्पे सुखमास्ति॥

छान्दो०: 7.23.1

विश्व व्यापी जीवन सुख स्वरूप है।

उपर्युक्त कथन का भावार्थ यह है कि, जब व्यक्ति विकसित होकर परिवार का रूप धारण करता है और परिवार-परिवार मिलकर विश्व परिवार का परिवेश धारण करते हैं, तब उसी से चहुं ओर सुख और अमृत रस की धारायें फूटती है।

वैयक्तिक जीवन का वैश्विक-जीवन में परिवर्तित होना ही जीवन-विकास की पराकाष्ठा है। यह निर्विवाद सत्य है कि व्यक्ति-परिवार के बिना या व्यापक बने बिना सुखी नहीं हो सकता।

परिवार मानव-कृत संस्था नहीं है। परिवार प्रकृति प्रदत्त संस्था है। यह संस्था आत्म-भावों या आत्मीयता की अभिव्यक्ति है। इसी का दर्शन आत्म-दर्शन है। आत्म दर्शन करने से या व्यापक (बड़ा) बनने से मानव-मानव से घृणा नहीं आत्मवत् प्रेम करता है। परिवार द्वारा आत्मा का आत्मा से लगाव होता है। यही कारण है कि सृष्टि के सभी जीव परस्पर मिल जुलकर आत्मीयता के साथ जीवन यापन करते हैं। सभी जीवों में सन्तति (आत्मजों)

पोषण के भाव निहित हैं।

वस्तुतः संयुक्त या संगठित परिवार का विकास सत्य, प्रेम, त्याग और अहिंसा आदि उन उदात्त भावों से हुआ है, जो सभी की आवश्यकता हैं। सत्य-प्रेम और आत्मीयता में ही वह शक्ति स्थित है, जो व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़कर अथवा आत्मा को आत्मा से बाँधकर व्यापक समाज का, विश्व परिवार का निर्माण कर सकती है।

स्त्री जो आत्मीयता की प्रतिमूर्ति है, वही परिवार की जननी है। वही जीवन प्रदायिनी है। वह अपने पुत्रों के लिए जो त्याग करती है, जो स्वयं कष्ट उठाकर अपनी सन्तति को सुख देती है, वह माँ, के अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता नहीं हो सकती। माँ, उस सत्ता का नाम है, जो स्वयं भूखी रहकर बच्चों का पोषण करती है। माँ, जहाँ ममता की मूरत है वहीं यह दया, क्षमता, धैर्य की सूरत भी है। वह उस धर्म या उन गुणों की देवी है जो जीवनदाता है।

परिवार वह स्थायी संस्था है, जो मनुष्य को व्यापक बनने का पथ प्रशस्त करती है। जीवन जिस व्यापक सत्ता से उद्भूत हुआ है, परिवार उसी के मिलन का प्रतीक द्वार है। घर अनन्त-सत्ता का विश्राम स्थल है। यदि व्यक्ति अकेला है तो वह कहीं भी सुखी नहीं हो सकता। सुख-भोग के लिए उसका परिवार के रूप में विकसित होना आवश्यक है। जैसे व्यक्तिगत सुख के लिए परिवार अनिवार्य है, वैसे ही समष्टिगत या व्यापक सुख के लिए विश्व परिवार आवश्यक है। सर्व सुख के लिए मानव या मानव समाज को विश्व बंधुत्व के बंधनों में बंधना चाहिए।

कल्पना कीजिए यदि व्यक्ति **वसुधैव कुटुम्बकम्** का रूप धारण करता है तो जगत में डर भय, भूख, भ्रष्टाचार, चोरी, डकैती, व्यभिचार और हिंसाचार पनप नहीं सकता।

विश्व परिवार

मानव समाज का संगठित रूप विश्व परिवार है। जैसे

माता-पुत्र के नाते से परिवारों का निर्माण होता है, वैसे ही भूमि-माता है और हम सब उसके पुत्र हैं। इन नाते से विश्व परिवार का विकास होता है–

'भूमि-माता पुत्रो अहम् पृथिव्या' अथर्व॰: 12.1

जैसे माता अपने दुग्ध से अपने पुत्रों का पालन करती है, वैसे ही भूमि माता अपने पियुष से अपने सभी पुत्रों का पोषण करती है। वेदों के अनुसार पृथिवी माता का अमृत पियुष उसके किन्हीं विशिष्ट पुत्रों के लिए नहीं, अपितु उसके सम्पूर्ण पुत्रों के लिए है। यही भाव विश्व परिवार के विकास के लिए पर्याप्त है।

प्रेम, स्नेह व आत्मीयता की उत्पत्ति परिवार के अभाव में सम्भव नहीं है। स्त्री-पुरुष आत्मवान होकर ही पति-पत्नी के पवित्र बन्धनों में बंधकर उन सम्बन्धों को जन्म देते हैं, जो परिवार की उत्पत्ति के मूल सूत्र हैं। जो जीवन को सब ओर से घेरकर जीवन विकास के अवसर प्रदान करता है। वस्तुतः जीवन परिवार के पथ पर चलता हुआ सब ओर फैलता है। पारिवारिक भाव विश्व जीवन के लिए अनिवार्य है। परिवार से वे सब गुण उत्पन्न होते हैं जो व्यापक जीवन के लिए आवश्यक हैं।

परिवार से लाभ

परिवार जीवन की पूर्ण इकाई है। परिवार से जहाँ प्रेम या आत्मीयता का विकास होता है, वहाँ उसी से त्याग, परोपकार, परपोषण के भाव परिपक्व होते हैं। मिल जुलकर या सहयोग, समन्वय के साथ काम करने की आदत परिवार से ही विकसित होती है। परिवार सहकारिता का जीवंत रूप है। परिवार के सदस्य श्रम-विभाजन से कैसे कार्य क्षमता बढ़ती है, वह परिवार से सीख सकते हैं। परिवार के सदस्य मिल जुलकर जिस मनोभाव व जिस अनुशासन के साथ घर के काम सम्पन्न करते हैं, वह भी अनुकरणीय है।

पारिवारिक जीवन में जहाँ-जहाँ सुख की वर्षा होती है, वहीं दुख-तनाव सभी सदस्यों में वितरित होकर कम हो जाता है। परिवार सुखप्रद के साथ-साथ दुखनाशक भी है।

पारिवारिक जीवन का ह्रास कैसे हुआ?

जो परिवार विश्व शांति के कारण अस्तित्व में थे, वे पूंजीवाद या अवैध धन व अवैध या अनैतिक काम-भोग के कारण टूट-टूट कर केवल पति-पत्नी के रूप में कैसे सिमटते जा रहे हैं यह विश्व पटल पर सब ओर देखे जा सकते हैं। पूर्व में जो परिवार जीवन प्रदायक थे, वे अब अति अर्थ और अति काम से त्रस्त हैं। पूंजीवाद और भोगवाद ने मानव जीवन को उस बाजार में परिणत कर दिया है, जिसमें पैसा ही भगवान है। पूंजी बाजार में पूंजी के बल पर सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, न्याय-अन्याय, मौत और जीवन सब कुछ बेचा जा रहा है। माँ-बाप, भाई बहन तथा पुत्र-पुत्री आदि के जो सम्बन्ध पवित्र थे, वे धन की शक्ति से धीरे-धीरे कलुषित किये जा रहे हैं। अर्थ और काम (सेक्स) की चकाचौंध में अब पिता-पिता, माँ-माँ नहीं रहे और भाई-भाई न रहे। अर्थ और कामलिप्सा ने मानवीय सम्बन्धों को इतना वीभत्स कर दिया है कि अब यह जानना कठिन हो गया है कि कौन किसकी पत्नी है और कौन किसकी बहिन व पुत्री है? सेक्स के मार्केट में सब एक जैसे हैं, कोई भी किसी के साथ आ जा सकता है। धन वालों के लिए सम्बन्धों का बाजार सजा है। मोल तोल करके सम्बन्ध खरीदे जा सकते हैं। खरीदने के लिए केवल धन चाहिए। धन काला हो या गोरा इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

अवैध धन और अवैध काम। दोनों सगे भाई हैं। इन दोनों सगे भाईयों ने मिलकर संयुक्त परिवार को उजाड़कर पत्नी के पवित्र बंधनों को धन की कटार से काटकर प्रेयसी या वेश्या में परिवर्तित

कर दिया है। इस प्रकार अवैध धन से अवैध कामभाव विकसित होते हैं। संसार में परिवारों को उजाड़ने वाला जो कामाचार बढ़ा है उसका एकमात्र कारण काला धन है। धन से जहाँ नारी को नंगा किया जा रहा है, वहाँ उसके कौमार्य को भी कुचला जा रहा है। काले धन के कारण स्त्री का जो स्तर गिराया गया है, उससे परिवार टूट रहे हैं। एक ओर जहाँ अनाथ बालक-बालिकाओं की फौज भटक रही है, वहीं दूसरी ओर तलाकशुदा स्त्रियों को भी भटकने के लिए विवश कर दिया गया है। परिवारों के टूटने का दुष्परिणाम यह है कि जो पुत्र-पुत्री, माता-पिता के दिल के टुकड़े माने जाते थे, वे ही अब उन्हें घर द्वार से बाहर करके वृद्धाश्रम में ढकेल रहे हैं। अवैधताओं के कारण अब पति-पत्नी का घर भी तब तक है, जब तक उनके मन मिलते हैं। मन न मिलने पर पति दूसरी पत्नी और पत्नी दूसरे पति की खोज में दूसरे घर ढूँढते हैं।

अब विश्व में भोक्ता तथा भोग्या के ही सम्बन्ध अवशेष हैं। अर्थ और काम की अतिवादी प्रवृत्ति के कारण अब उन संयुक्त परिवारों की कल्पना करना व्यर्थ है, जिनमें दादा-दादी, नाना-नानी, माता-पिता, ताऊ-ताई, चाचा-चाची, भाई-बहिन, पौत्र-प्रपौत्र और पुत्र-पुत्री मोद प्रमोद के साथ एक ही घर में रहते थे। वेदों के अनुसार संयुक्त परिवार जीवन का वह आदर्श रूप है, जो विश्व-परिवार के लिए अनुकरणीय है।

इहैव स्तं मा वियौष्टं, विश्वम् आयुः व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर् नप्तृ-भिर्मोदमानौ स्व स्तकौ॥

अथर्व॰: 14.1.22

संयुक्त परिवारों में माता-पिता, दादा-दादी, ताऊ-ताई इत्यादि का वैश्वीक जीवन में क्या महत्व है इसका उल्लेख करते हुए वेदों में यह स्पष्ट किया गया है कि भावी सन्ततियों को कुमार्ग अथवा पाप अपराधों से रोकने का कार्य केवल पितर (माता-पिता,

दादा-दादी), ही कर सकते हैं।

अवन्तु नः पितरः सुप्र,याचना, उत देवी-देव-पुत्रे ऋतावृद्धज।
रथं न दुरगाद् वसवः सुदानवो, विश्वस्मान नो अहंसों निष् पिपर्तन॥

अथर्व॰ : 1.106.3

इस प्रकार परिवारों द्वारा जो आत्म-भाव व भ्रातृ भाव या परम आत्मीयता (व्यापक प्रेम) का विकास किया जाता था, उन्हें स्वर्ण और सुदंरी के उपासकों ने घृणा, द्वेष, कटुता, शत्रुता तथा कामचार और हिंसाचार में परिवर्तित करके विश्व में दुख-पीड़ा के बीज बो दिये हैं।

मानव को सुख चाहिए या दुख, उसे माँ की ममता चाहिए या क्रूरता, पिता का प्यार चाहिए या दुत्कार, भाई-बहन का स्नेह चाहिए या घृणा द्वेष और पुत्र-पुत्रियों से सम्मान चाहिए या अपमान। यह उसे निर्णय करना है। यदि उसे सुख और सत्कार चाहिए तो उसके लिए संयुक्त परिवार ही एकमात्र विकल्प है। परिवारों के टूटने से वर्तमान मानव समाज अति-भोगवाद के उस भंवर में फँस गया है, जिसके चारों ओर आतंकवादियों, चोर-डाकुओं, तस्करों, लुटेरों. बलात्कारियों, हत्यारों और झूठे बेईमानों का बसेरा है।

इस प्रकार यदि सुख चाहिए तो परिवारों को परिवार रहने दिया जाये, उसे मरुस्थल न बनाया जाये। परिवार के पथ पर चलकर ही मानव उस विश्व परिवार का व्यापक स्वरूप बन सकता है, जो सुखों का सागर है। उपनिषदों के अनुसार व्यापकता या विस्तार में ही सुख है, अल्पता या अपने आप में सिमटने में सुख नहीं, दुख है।

मानव सुख चाहता है, दुख कोई नहीं चाहता। अतः दुख मुक्त सुख के लिए संयुक्त परिवारों की उपयोगिता पहले से कहीं अधिक है। परिवार वह नौका है, जो डूबते हुए व्यक्ति को भवसागर से पार लगाती हैं। वर्तमान जगत में यदि मानव को जीवन से प्यार है, तो उसे मृत्यु से बचने के लिए पारिवारिक जीवन से उत्पन्न होने वाले मातृ-पितृ भाव और भ्रात्-भाव को स्वीकार कर लेना चाहिए।

भारतीय समाज में नारी का महत्त्व

–डॉ॰ रामावतार अग्रवाल, रायपुर

व्यक्ति समाज की एक इकाई है। वैदिक साहित्य में व्यक्ति से तात्पर्य केवल पुरुष न होकर स्त्री–पुरुष दोनों से है। सृष्टि या सतत् जीवन–प्रवाह के लिए दोनों अनिवार्य हैं। दोनों के योग से ही जीवन प्रवाह परिवारों के रूप में विकसित होता हुआ राष्ट्र और समाज का रूप धारण करता है। समाज में स्त्री–पुरुष दोनों का रूप समाहित है।

स्त्री–पुरुष एक–दूसरे के पूरक हैं। दोनों में से किसी की भी सत्ता कम–अधिक नहीं है। अपने–अपने स्थान पर दोनों महत्त्वपूर्ण हैं।

वर्तमान युग में स्त्री की जो दुर्दशा हो रही है। उसके लिए स्त्री–पुरुष दोनों समान रूप से उत्तरदायी हैं। प्राचीन भारत में जो नारी देवी के रूप में स्वीकृत हुई थी। वह अब अबला और केवल भोग की वस्तु कैसे बन गई? किसने उसे देवताओं के घर से बाहर निकाल कर रूप की मण्डी में बैठाया है? ये प्रश्न स्त्री पुरुष दोनों के लिए विचारणीय हैं। वेदों में स्त्रियों के लिए यह आदेशित किया गया है। कि वे अपने रूप का प्रदर्शन अपने पतियों के अतिरिक्त अन्य पुरुषों के समक्ष न करें। किन्तु अब सार्वजनिक या सामाजिक मंच पर स्त्रियों के नग्न सौंदर्य का प्रदर्शन क्यों और किसके द्वारा किया जा रहा है?

जिस मनु के देश में नारी पूजा होती थी उसीमें वह पर–पुरुषों के संग क्यों सैक्स और रोमांस अथवा बदबूदार प्रेम का खेल, खेल रही है और प्रेम के अभद्र, अश्लील और अमानवीय खेल

को समाज ने क्यों स्वीकृत किया?

मनु के अनुसार जिस देश–समाज में नारी की पूजा होती है वहाँ देवताओं या दिव्य शक्तियों का निवास रहता है। स्त्री को सम्मान देने वाला घर और समाज सम्पूर्ण सुखों से भरा रहता है।

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।

भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता के अनुसार स्त्रियाँ केवल घर में कैद होकर रहने वाली दासियाँ नहीं हैं। वेदों के अनुसार स्त्री ब्रह्म की अखण्ड शक्ति है।

ब्रह्म की अदिति शक्ति, रूद्र आदि देवों की माता, वसुओं की पुत्री और आदित्य की भगिनी है।

माता रूद्राणां दुहितां वसुनां स्वसादित्यानां अमृतस्य नाभि:।

ऋग्वेद: 8.10.15

ऋग्वेद के अनुसार स्त्री, ज्ञान, विज्ञान अथवा विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है–(ऋग्वेद 10.7.7), ऋषियों ने स्त्रियों को जो मान, सम्मान दिया है, वह विश्व इतिहास तथा साहित्य में अद्वितीय है। भारतीय नारी लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, जगत–जननी अथवा ब्रह्मा है। मानव सृष्टि की रचयित्री स्त्री ही है।

गृहस्थाश्रम जो परिवार का रूप है वह संसार की सर्वज्येष्ठ व सर्वश्रेष्ठ संस्था है। सबसे बड़ी संस्था की अनदेखी कर अन्य संस्थाओं या अन्य उपायों द्वारा जिस विश्व शांति या जिस मानव–कल्याण की कल्पना कर रहा है, उनसे विश्व कभी भी सुखी नहीं होगा।

मानव का जन्म और उसके सद्‌जीवन का निर्माण गृहस्थ के गृह या परिवार में ही होता है। अत: यदि परिवार का नियोजन सही या सत्य दिशा में किया जाये तो मानव जाति असत्य–अंधकार में भटकने तथा परस्पर टकराने से बच सकती है। स्त्री, जो ब्रह्म है, वह उन देवी और देवों को जन्म देकर मानव समाज को अँधेरे से उजाले की ओर ले जाकर एवं विश्व को मृत्यु से

बचाकर अमृत प्रदान कर सकती है। यही भारत का उच्चादर्श या सभ्यता की पराकष्ठा है, प्रत्येक व्यक्ति असत् से सत्, तम से ज्योति तथा मृत्यु से अमृत की ओर जाये।

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्युर्मा अमृतम् गमय।

इस प्रकार भारतीय समाज में स्त्रियों को जो महत्त्व दिया गया है वह अपने आप में अद्भुत है। वेदों के अनुसार स्त्रियों को देवी, दुर्गा, लक्ष्मी तथा सरस्वती का उच्च स्थान प्रदान किया गया है। स्त्रियाँ प्रेम, स्नेह और सेवा द्वारा जगत् के दुष्टों का विनाश करने वाली शक्ति स्वरूपा हैं।

स्त्री संसार को सत्यव्रती-दिव्य सन्तति देने वाली जगत् जननी है। वेदों के अनुसार जो स्त्रियाँ ऋत या सत्य का संवर्द्धन करने वाली हैं, वे ही सुपूज्या, पवित्र कर्मी, स्र्व स्पृहा दुरित निवारिका और अनासक्त होती हैं। ऐसी स्त्रियाँ ही देवियाँ हैं, और ऐसी देवियाँ ही देवजनों को जन्म देने के लिए दाम्पत्य धर्म स्वीकार करती हैं:

ऋग्वेद: 1.142.6

दाम्पत्य धर्म का पालन करते हुए एक अन्य मंत्र में यह कहा गया है कि देवियों को देव जनों को ही जन्म देना चाहिए **'जनया दैव्यं जन्म्।'** ऋग्वेद: 10. 53.6

कुछ अपवादों को छोड़कर भारत में नारी का तिरस्कार या अवहेलना कभी नहीं की गई। नारी उस परिवार की मुखिया होती है, जिससे विश्व एक परिवार के रूप में विकसित हो सकता है। स्त्रियाँ उन माताओं का रूप हैं जिनसे ममता, प्रेम, स्नेह, अहिंसा, दया, क्षमा, त्याग और सेवा के पवित्र भाव पैदा होते हैं। उपर्युक्त गुणों के कारण स्त्री पत्नी रूप में घर में महारानी (सम्राज्ञी) का पद प्राप्त करती है। वह अपने विशिष्ट गुणों के कारण सास, श्वसुर, ननदों और देवरों आदि सभी की सम्राज्ञी

होती थी।

सम्राज्ञी श्वसुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवेषु॥

ऋग्वेद: 10.85.46, अथर्व: 14.1.44

वस्तुत: पत्नी का यह धर्म है कि, वह अपने परिवाररूपी साम्राज्य की सुसेविका और सुव्यवस्थापिका बनकर सबके दिल-दिमाग पर राज्य करे।

वैसे भी पत्नी उसे कहते हैं, जो पति को पतन से बचाये, और नारी उसे कहते हैं जो नेतृत्व करे।

यदि व्यक्ति तथा परिवार सदाचारी और परोपकारी हो जाये तो संसार में सब ओर सुख व्याप्त हो सकता है। वेदों में गृहस्थ या पति-पत्नी के लिए यह कहा गया है कि वे दोनों सत्यनिष्ठ रहते हुए वृद्ध और अक्षय पुरुषों का सहारा या आश्रय बनें। इसके अतिरिक्त दम्पति को भूखों के लिए भोजन, पापी के लिए रक्षक और तारक, अंधों के लिए आँख, दुर्बल व दलितों के लिए रक्षक और रोगियों के लिए चिकित्सक बनना चाहिए।

ऋग्वेद: 10.36.3

इस प्रकार परिवार या गृहस्थ संसार को रोग, पाप और अभावयुक्त कर सकते हैं। सब सुखी हों, कोई भी दुखी न हो यही गृहस्थ का धर्म है। अत: इसी धर्म का पालन करते हुए परिवार से परिवारों और परिवारों से विश्व परिवार का विकास करना चाहिए।

वेदों में स्त्रियों को जो सम्मान प्रदान किया गया है, और परिवारों की जो महत्ता तथा प्रतिष्ठा प्रतिपादित की गई है, उसके रहते हुए मानव जीवन कैसे अपवित्र हुआ? व्यक्ति व्यक्ति का शत्रु कैसे बन गया? जिस स्त्री को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया था, वह पतिता कैसे बन गई? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये पुरुष के चार पुरुषार्थ हैं। मनुष्य अर्थ और काम का भोग करता है।

यदि अर्थ और काम, धर्म द्वारा नियंत्रित हैं, तो व्यक्ति इनके लिए पाप अपराध नहीं कर सकता। आज अर्थ और काम पर धर्म का कोई नियंत्रण नहीं है। धर्म के अभाव में मानव स्वच्छंद हो गया है। धर्म के अभाव में सत्य की परिभाषायें बदल दी गई है। कर्तव्यों को किनारे करके अधिकारों के लिए संघर्ष हो रहा है। स्त्री-पुरुष के कर्तव्यों और अधिकारों में जहाँ भेद नहीं किया गया था, वहाँ भी नारी स्वतन्त्रता, स्वच्छंदता तथा नारी के अधिकारों के आरक्षण की बात की जाने लगी है।

सत्य धर्म के कारण जिस नारी को समाज में शीर्ष स्थान प्राप्त था, वह अब धर्म के अभाव में नग्नता, अभद्रता, अशिष्टता, निर्लज्जता, और अमानवीयता के निम्न स्तर पर पहुँच गई है। पहले जो स्त्री अपने रूप को पर पुरुष के समक्ष प्रदर्शित नहीं करती थी, वही अब न केवल पर पुरुष अपितु सार्वजनिक मंच पर नग्न और अर्धनग्न प्रदर्शन में गर्व महसूस करती है। पूर्व में जो कामक्रीड़ायें बंद कमरे में की जाती थी, वे अब खुले मंच पर बिना हिचक की जाती हैं अब स्वछंद कामुकता का प्रदर्शन धीर-धीरे समाज में स्वीकृत होता जा रहा है। अब भारत की कुमारियों का यौवन रूप की मंडी में नीलाम होने लगा है। अब बालीवुड में सुन्दरियों के सौन्दर्य की कीमत कुछ करोड़ रुपयों तक पहुँच गई है।

वेदों के अनुसार कामाग्नि उस बड़वानल की तरह है, जो पूरे मानव समाज को जलाकर रख कर देगी। अतः यदि प्रबुद्ध वर्ग समय रहते हुए नहीं जागा तो वह समय निकट है, जब कुमारी के कौमार्य का कोई अर्थ नहीं रहेगा। तब न कोई किसी की बेटी होगी, न कोई किसी की बहू होगी और न कोई किसी की बहिन होगी, तब जो जिसके साथ चली गई वह उसी की होगी। यह समाज के पतन की पराकाष्ठा है। ऐसे समाज में स्त्री केवल एक वेश्या होगी।

वेश्या को किस दृष्टि से देखा जाता है तथा समाज में उसका

क्या स्थान है, इससे हम सब अवगत हैं। स्त्री का समाज में स्तर गिरा है, अथवा उसके मान सम्मान में जो कमी आई है उसके लिए वह स्वयं और पुरुष दोनों दोषी हैं।

अमर्यादित अर्थ भोग और अमर्यादित काम भोग, इन दोनों के सहयोग और भोगवाद के अनियंत्रित होड़ के कारण स्त्री के मूल्यों का अवमूल्यन हुआ है। अब अर्थ की अंधी होड़ के कारण सिनेमा तथा विज्ञापनों द्वारा नारी का यौन-शोषण हो रहा है। जैसे पूर्व में चौराहों पर महापुरुषों के चित्र लगाये जाते थे, वैसे ही अब कामाग्नि से प्रज्वलित जगत में पत्र-पत्रिकाओं, चलचित्रों और विज्ञापनों द्वारा नारी की नग्नता बेरोकटोक प्रदर्शित की जा रही है। कामाग्नि से राष्ट्र का यौवन जलना आरंभ हो गया है। अतः यदि समाज को काम ज्वालाओं से बचाना है तो स्त्री-पुरुष, समाज और राज्य सबका यह धर्म और कर्तव्य है कि अवैध धन और अवैध काम भोग पर रोक लगायें।

कामुकता या सैक्स का खेल अन्तरतम तक प्रवेश न करे। इसके लिए सर्वप्रथम स्त्रियों को सत्य को धारण करके अपने रूप का अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष के समक्ष प्रदर्शन न करें, तथा सदा नीचे की ओर देखकर चलें। अर्थात् स्त्री की चाल ऐसी होनी चाहिए जिससे देखने वाले उसके प्रति आकर्षित न हों। इसके अतिरिक्त स्त्रियों को अपने युगल अंगों को दिखाते हुए नहीं चलना चाहिए।

अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥

ऋग्वेदः 8.33.19

इस प्रकार यदि नारियाँ यह संकल्प कर लें कि धन लोभ के लिए शारीरिक प्रदर्शन नहीं करेंगी और संयम, मर्यादा में रहकर उस वैदिक नारीत्व को धारण करेंगी जो उन्हें सुपत्नियाँ, सुरत्ना, सुस्वथ, सुप्रिया और सुजननी बनने के लिए प्रेरित करता है, तो

जगत् से जनसंख्या वृद्धि, भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, नारी शिक्षा, और नारियों के अधिकारों से जितनी भी समस्यायें हैं, उनका निदान स्वतः हो जावेगा। अथवा ऐसी समस्यायें समाज में पैदा ही नहीं होंगी।

संक्षेप में जब जगत् में सब स्त्रियाँ सुजननी और सुपत्नी होंगी तब समाज में नारी को वही उच्च स्थान प्राप्त होगा जो मनु के भारत में प्राप्त था।

उपर्युक्त कथनों के अनुसार आचरण करने पर जब मातायें दिव्य या देव जनों को जन्म देंगी, तब राजा अश्वपति की भाँति विश्व के राज्य में यह घोषणा कर सकेंगे कि हमारे राज्य में कहीं भी खोजने से चोर, झूठे, बेईमान, अनपढ़, अज्ञानी और व्यभिचारी पुरुष नहीं मिल सकते।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्थो न मद्यपो।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

छान्दोग्योपनिषद्: 5.11.5

जब चोर, डाकू, ठग, लूटेरे और सेक्स के व्यापारी नहीं होंगे, तब अवैध धन और अवैध व्यापार अपने आप बंद हो जायेगा। और तब यह संसार देव और देवियों का संसार होगा।

भगवान व गुरु

भगवान की भक्ति अब तो खो गई है।
गुरु भक्ति भगवान पे हावी हो गई है॥
धर्म के नाम पर अब ठगी चल रही है।
गुरु की शान से तो बग्गी चल रही है॥
गुरु की महिमा के नये-नये श्लोक सुनाते हैं।
गुरु को अब भगवान से भी बड़े बताते हैं॥
गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु महेश्वर कहलाते हैं।
गुरु सिद्ध, गुरु योगी, बोर्ड बड़े-बड़े लगाते हैं॥
गुरु को सही अर्थ, सही मायने दीजिए।
भगवान से ज्यादा महत्त्व न इन्हें दीजिए॥
'आज़ाद' गुरु को गुरु ही रहने दीजिए।
यह सच्चाई है, सच्चाई मुझे कहने दीजिए॥

आधुनिक युग में धर्म का वैज्ञानिक स्वरूप

–डॉ० रामावतार अग्रवाल, रायपुर

धर्म एक ऐसी अव्यक्त ईश्वरीय सत्ता है, जो प्रकृति तथा जीवन में संतुलन बनाती है। धर्म ईश्वरीय सत्ता होने से कालातीत है। काल व युग उससे उत्पन्न होते हैं, वह उनसे नहीं। **वह किसी पीर-पैगम्बर और अवतारी पुरुष से प्रसूत सत्ता** भी नहीं है।

विज्ञान और धर्म आत्मा की अदृश्य शक्तियाँ हैं। विज्ञान से सत्य नियम उदय होकर, धर्म द्वारा धारण किये जाते हैं। यदि ज्ञान, पथ प्रशस्त करता है, तो धर्म उस पर चलाता है। विज्ञान तब तक अपंग है, जब तक वह क्रिया में परिवर्तित नहीं होता। **धर्म शब्द, "धृ-धातु से बना है, जिसका अर्थ धारण करना है।** फलत: **क्या धारण करना क्या नहीं करना, यही धर्म का काम है। क्या भद्र है ओर क्या अभद्र? यह धर्म से ही ज्ञात होता है।** इसके परिणाम स्वरूप विज्ञान की कीमत कोरे ज्ञान विज्ञान में नहीं, वरन उसके क्रियान्वयन में है। **क्रिया या कर्म आत्मा की प्रकृति है** तो विज्ञान उसका प्रकाश। **इस प्रकार दोनों के समन्वित स्वरूप का नाम ही धर्म है।** धर्म का कोई पर्यायवाची शब्द नहीं है। धर्म, आत्मा सुख की स्वाभाविक आकांक्षा है। सुख की कामना सबमें समान है। अत: जो गुण समानता का पोषण करते हें वे सब धर्म हैं। सब सुखी हों। इस सबका समान पोषण हो। यही धर्म अधर्म की कसौटी है।

इस प्रकार धर्म का भिन्न-भिन्न मत मतान्तरों, सम्प्रदायों मजहबों और रिलीजन से कोई सम्बन्ध नहीं है। **धर्म, काल निरपेक्ष है। वह प्रत्येक युग में प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान रूप से ग्राह्य है।** परंतु मत विश्वास व आस्थायें व्यक्तियों से संबंधित होने से काल

व स्थिति सापेक्ष हैं। अतः वे सदैव प्रभावी नहीं रह सकते। **यदि वर्तमान मत या तथाकथित धर्म, मनुष्य को सुख देते, तो जगत दुखों के फंदे में नहीं फंसता।**

यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि काल, लोक और सृष्टि ईश्वर की उस शक्ति अथवा ऋतनियमों द्वारा धारण किये गये हैं, जो श्रम-तप या चेतना से युक्त हैं

श्रमेण तपसा सृष्टा, ब्रह्मण वित्तेश्रिता॥ अथर्व: 12.5.1

अतः विश्व जीवन को धारण करने वाली शक्ति धर्म है। इसके फलस्वरूप **धर्म उन सत्यनियमों का नाम है, जो जीवन को धारण करते हैं।**

"धर्मण धृतां॥"

वस्तुतः धर्म ऐसी आन्तरिक शक्ति है जो ऋत (राईट) सत्ता से स्रवित होती है सत्य है। वेदों के अनुसार व्यापक सत्यों, ऋतनियमों, तप यज्ञ और ज्ञान विज्ञान के जो नियम है उन्हीं ने जीवनदायनी जगत् जननी भूमि माता को धारण किया हुआ है।

"सत्येनोत्तमिता भूमिः॥"

ऋग्वेद: 10.85.1

सत्यं बृहदृतमुग्रंदीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति॥
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवीनः कृणोतु॥

अथर्व: 12.1.1

ऋग्वेद के अनुसार धर्म में जो सत्यतायें व्याप्त हैं, उन्हीं के धारण से जीवन उदय हुआ है। ऋग्वेद: 10.56.3

और सत में जो असत् स्थित है, वही अधर्म है। धर्म या सत्य अमृत और अधर्म या असत्य मृत्यु कारक है। सृष्टि का जो अखिल विज्ञान है, वही सविता देव का स्वधर्म है। वह अपनी आभाओं के साथ प्रकृति में प्रविष्ट होकर ऋत नियमों या प्रकृति रूपी भुजाओं से सम्पूर्ण सृष्टि चक्र का संचालन करता है।

"देवः कृणुते स्वाय धर्मणो।"

ऋग्वेद: 4.53.3

सत्य में धर्म व्याप्त है। अत: सत्य धर्म की कीमत कभी कम नहीं हो सकती। ऋग्वेद के अनुसार व्यक्ति को सुपथगामी रहते हुए धर्म या शाश्वत सत्यों तथा अन्य गुणों को प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि धर्म और सत्य जीवन के सार हैं।

"सुवितो-धर्मः प्रथमानु सत्या, सुविता देवान्त।
सुवितोन पत्म॥"

ऋग्वेद: 10.56.3

सत्य और धर्म परस्पर पूरक है। सत्य ही धर्म या धर्म ही सत्य है। वेदों में सत्य व धर्म, कर्तव्य कर्मों के रूप में भी प्रयुक्त हुए हैं। **"एकस्मयाधि धर्मणितस्याद् यजन्म् असि॥"** यजुर्वेद: 20.27

धर्म ईश्वर की वह शक्ति है जो ब्रह्माण्ड को आकर्षण और प्रक्षेपण बल द्वारा धारण करती है। वह वनस्पति की हरियाली, सूर्य की गर्मी, चन्द्रमा की चाँदनी, जल की शीतलता, अग्नि की ज्वलनशीलता, वायु की प्राण शक्ति, तथा पृथिवी की गंध सुगंध द्वारा अभिव्यक्त हो रही है। वस्तुत: पदार्थों के भिन्न-भिन्न गुण धर्म ही, उनकी पहिचान हैं। गुण धर्म के द्वारा ही सोना, चाँदी, हीरे मोती और लोहे व तांबे की परख की गई है। आम, अनार अंगूर आदि फल अपनी-अपनी सुंदरता तथा सुगंध और स्वाद के द्वारा विश्व विख्यात हुए हैं। अत: जैसे पत्र-पुष्प, फल, पशु पक्षी स्व: धर्म के कारण चिह्नित हुए हैं, वैसे ही **मानव अपने धर्म मानवता से ही मानव है।**

इस प्रकार विविध पदार्थों और जीवों के गुणों के धारण करने वाली शक्ति ही धर्म है। धर्म शक्ति किसी पीर-पैगम्बर संत-महंत तथा देवी-देवताओं के द्वारा निर्मित शक्ति नहीं है। वह सर्वत्र प्रवाहित रहने वाली धर्म शक्ति है। अत: मानव धर्म किसी किताब में कैद रहने वाला धर्म नहीं है। वह निरंतर बहने वाली शक्ति धारा है। यही शक्ति सनातन धर्म है। यही धर्म पुराना, पहले का अथवा सृष्टि पूर्व का धर्म है। इसी धर्म को वेदों में पुरातन धर्म कहा गया है।

"धर्म पुराणाम्"

अथर्ववेद: 18.3.1

ऋग्वेद: 8.30.3 के अनुसार सनातन धर्म ही पितृ या आदिम पथ है, जिसपर चलकर पूर्वजों ने सुख प्राप्त किया था। अत: सुख शांति के लिए हमें भी पितृ पथ का अनुकरण करना चाहिए। हमें सुखदायक मानवीय मार्ग से कभी भी दूर नहीं जाना चाहिए।

ते नस्त्राध्वं ते ऽवत तउ नो अधि वोचत।
मानः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नेष्ट परावतः॥

ऋग्वेद: 8.30.3

उपर्युक्त मंत्र के अनुसार मनुष्य को उस धर्म का पालन करना चाहिए, जो शाश्वत है। शाश्वत धर्म का संबंध किसी व्यक्ति विशेष से न होकर, आत्मा से उत्पन्न होने वाली आत्मीयता या मानवता से है। मानवता के अभाव में मानव, अमानव व दानव है। वास्तव में मानवता या आत्मीयता ही व्यक्ति का सत्य धर्म है और जो धर्म सदैव व सर्वत्र रहने वाला है, वही विज्ञान या तर्क सम्मत धर्म है।

वेदों के अनुसार भौतिक अभौतिक सभी शक्तियाँ मिथुनरूपा हैं।

उत्ताश्विनावभरद् यत् तदासीद्
जहादुद्वा मिथुना सरण्यूः॥"

ऋग्वेद: 10.17.2

जैसे भौतिक शक्तियों के ऋण, धन या सकारात्मक नकारात्मक दो ध्रुव या दो रूप हैं, वैसे ही आत्म शक्तियों के सत्य-असत्य, विद्या-अविद्या, त्याग-स्वार्थ, दान-भोग, प्रेम-घृणा, राग-द्वेष और कर्म अकर्म या श्रम-अश्रम दो भिन्न स्वरूप हैं। उपर्युक्त शक्तियों के संतुलन से सुख और असंतुलन से दुख उत्पन्न्त होता है। दो विपरीत ध्रुवों वाली शक्तियों में संतुलन स्थापित करने वाली शक्ति, संयम है। संयम को सशक्त बनाने वाली आत्मा की अन्य शक्ति धारायें धैर्य, क्षमा, सहनशीलता, दया एवं निरपेक्षता अथवा

अनासक्ति आदि हैं।

जैसे प्राकृतिक शक्तियों का संचालक या नियामक परमात्मा है, वैसे ही आत्म शक्तियों का नियन्ता आत्मा है। जैसे प्रकृति में आकर्षण और प्रक्षेपण दो बल काम कर रहे हैं, वैसे ही जीवन में आत्मीयता तथा अनात्मीयता प्रभावशील हैं। आत्मीयता प्रेम द्वारा अन्यों को आकर्षित करती है और अनात्मीयता घृणा-द्वेष द्वारा व्यक्ति को व्यक्ति से दूर फेंकती है।

अपनी ओर खींचना और दूर फेंकना, इन्हीं दो शक्तियों से ब्रह्माण्डीय जीवन धारण किया हुआ है। जीवन धारण करने से दोनों विपरीत शक्तियाँ धर्म रूप हैं। यदि आकर्षण बल प्रकृति का धर्म है, तो प्रक्षेपण बल भी उसी का धर्म है। प्रतिकूल गुण धर्म होने के उपरान्त भी, प्रकृति में सब एक दूसरे के मित्र है। कोई किसी का शत्रु नहीं है। विश्व में स्मस्त शक्तियाँ परस्पर सहयोग द्वारा सबका समान पोषण कर रही हैं।

जैसे दो विपरीत शक्तियों के समन्वय से, ग्रहों की गति में संतुलन बना रहता है, वैसे ही मानवीय जीवन में आत्मीयता तथा अनात्मीयता अथवा प्रेम और घृणा अथवा आसक्ति अनासक्ति या प्रवृत्ति निवृत्ति के योग से ही समन्वय स्थापित हो सकता है। समन्वय के अभाव में व्यक्ति केवल प्रेम ही प्रेम और केवल घृणा या द्वेष के बल पर सुखी नहीं हो सकता। सुख और आनन्द प्राप्त करने के लिए जितना मिलन या प्रेम बंधन जरूरी है, उतना ही बिछुड़ना भी आवश्यक है। दुख का अपना अस्तित्व नहीं है। सुख का अभाव ही दुख है। अतः यदि दुख व मृत्यु न हों, तो सुख तथा अमृत भी नहीं रह सकते। अतः सम्पूर्ण प्रतिकूल बल या क्रियायें एक दूसरे की अपेक्षा से हैं।

"अहोरात्रे प्रजायेते अन्यों अन्यस्यरूपयो।।"

अथर्ववेद: 10.8.23

विश्व इतिहास व साहित्य की स्मृति में जितनी भी सुख दुख

की घटनायें घटित हुई हैं, वे सब सुख दुख व जीवन मृत्यु के समन्वय व असंतुलन का सार हैं। स्त्रिलिंग पुर्लिंग या स्त्री पुरुष के मिलन से ही भावों की उत्पत्ति तथा सृष्टि उत्पन्न हुई है। ऋण धन तथा स्त्रिलिंग पुर्लिंग दो विपरीत शक्तियाँ प्रकृति में क्रियाशील हैं।

दो प्रतिकूल शक्तियों के योग से ही भाई बहिन और अन्य मानवीय सम्बन्ध उत्पन्न होते हैं। सृष्टि का यह क्रम अनादि है। यह न टूटने वाला जीवन का सनातन चक्र है। और जो इस चक्र को धारण करने वाली शक्तियाँ हैं, वे भी सनातन हैं। वे अकस्मात कहीं से उत्पन्न नहीं हुई हैं।

अत: मानवीय रिश्ते कभी भी, किसी भी कीमत पर न टूटें। वे सदैव पवित्र बंधन में बंधे रहें। व्यक्ति का व्यक्ति से, पत्नी का पति से सम्बन्ध विच्छेद न हो यही काम धर्म का है। धर्म केवल शोभा या जय-जयकार की वस्तु नहीं है। वह किसी आस्था विश्वास व मत का रूप भी नहीं है फलत: वैदिक धर्म के अनुसार यदि पति पत्नी में तलाक होता है, तो वे कभी भी धार्मिक नहीं हो सकते।"

दुख के कीटाणु या कारण बाहर नहीं, आत्मा के अंदर स्थित हैं। अत: जब सम्बन्ध टूटते हैं, तब उसी से दुख व पीड़ा पैदा होते हैं।

इस प्रकार **जिस व्यवस्था से, परिवार और समाज में विखंडन पैदा नहीं होता, वही धर्म व्यवस्था है। जिससे व्यक्तियों में बिखराव उत्पन्न होता है, वह व्यवस्था अधार्मिक है।** धर्म का सहायक सत्य और अधर्म का असत्य है। धर्म-अधर्म सत्य-असत्य के द्वंद्वयुद्ध में मानव जाति फँसी हुई है। अत: वैदिक दर्शन और वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह सिद्ध है कि ऐसा अवसर कभी नहीं आयेगा जब पूर्ण मानव जाति धर्मचारी या सत्याचारी दो शक्तियों के संतुलन असंतुलन के बीच में आदमी सदैव झूमता रहेगा। किन्तु दोनों के समन्वय व संतुलन से व्यक्ति मृत्यु के सहयोग के अमृत

प्राप्त कर सकता है।

संतुलन, संयम, दमन, पवित्रता, इंद्रिय निग्रह धी–विद्या और सत्य के अभाव में जीवन विकसित नहीं हो सकता। इन्हीं गुणों से संतुलन उत्पन्न होता है। अत: ये धर्म के मुख्य अंग हैं। प्रजापति ने अपने तीनों पुत्रों देव, दानव व मानव को दमन, दया और दान द्वारा समाज में समन्वय स्थापित करने का धार्मिक उपदेश दिया था उनके अनुसार समाज में अच्छे बुरे सभी का उपयोग होना चाहिए। विश्व के क्रिया कलाप शक्ति में मिथुन रूप से आवृत्त है। अत: देव व दैत्य का अस्तित्व सदैव रहेगा। दोनों की सृष्टि स्वाभाविक है। दानवों राक्षसों को सुधारा जा सकता है, नष्ट नहीं किया जा सकता। **वेदों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में देवत्व या श्रेष्ठत्व विकसित किया जा सकता है। परंतु बन्दूक के बल पर व्यक्ति को बदलना संभव नहीं है। मनुष्य को चरित्रवान् श्रेष्ठ या आर्य बनने के लिए, आत्मीयता या प्रेम, श्रमशीलता या कर्मशीलता, अहिंसा और यज्ञदान जैसे गुणों की आवश्यकता है।**

इदं वर्धन्तोअप्तुरः, कृश्वन्तों विश्वम् आर्यम्।
अपहन्तो अराण्णाः॥

ऋग्वेद: 9.63.5

मानव मानव बने, 'मर्नुभव' या **'देव'** बने **यही धर्म का उद्देश्य है।** अत: **जो गुण या दक्षतायें मनुष्य को श्रेष्ठ बनाते हैं, वे सब धर्म हैं। शाश्वत धर्म का अनुमोदन करते हुए मनु ने धैर्य, क्षमा, दमन या संयम, अस्तेय, पवित्रता, इंद्रिय निग्रह, धी–विद्या, सत्य और अक्रोध को धर्म के दस गुण या लक्षण माना है।**

"धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शोचं इंद्रिय निग्रहः।
धी, विद्या सत्यमक्रोधो दशंक धर्म लक्षणं॥"

मनुस्मृति

उपर्युक्त धर्म के लक्षण क्यों धर्म गुण हैं, इसकी पृथक् से

वैज्ञानिक व्याख्या की जानी चाहिए। **ये ऐसे धर्मगुण हैं, जो जीवन में संतुलन उत्पन्न करने के लिए आवश्यक हैं।** इसके अतिरिक्त श्रुति तथा स्मृति ग्रंथों के अनुसार धर्म गुणों की धारणा से जो आचरण किया जाता है, वही परम धर्म है।

"आचारः परमोधर्माः श्रुत्युक्त स्मृति एवच॥"

जैसे सत्य में असत्य, अमृत में मृत्यु व्याप्त है (मनु०: 1.108) वैसे ही धर्म में अधर्म और गुणों में अवगुण व्याप्त है। परन्तु वैदिक धर्म के अनुसार मनुष्य को मृत्यु से मुक्त होकर अमृत प्राप्त करना चाहिए।

"बंधनान, मृत्योरमुक्षीय मामृतात॥"

ऋग्वेद: 7.56.12

किन्तु मृत्यु क्या है? अमृत क्या है? यह जाने बिना मृत्यु से मुक्त होकर अमृत प्राप्त नहीं किया जा सकता। सतत् प्रवाहित रहने वाला जीवन प्रवाह जन्म मृत्यु का खेल है। अमृत में विष, विष में अमृत, सत्य में असत्य, असत्य में सत्य, प्रेम में घृणा और घृणा में प्रेम व्याप्त है। फलतः सभी प्रतिकूल तत्वों या शक्तियों से समन्वय करके ही लाभ प्राप्त किया जा सकता है। आत्मा ही सत्य और वही झूठ बोलता है। धर्म अधर्म भी आत्मा से ही पैदा हुए हैं। अतः आदमी सत्य असत्य या धर्म अधर्म में से किसी को भी नहीं छोड़ सकता। जगत् में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं मिल सकता जिसने कभी झूठ न बोला हो। यथार्थ की धरातल पर सत्य असत्य दोनों इस प्रकार धर्म, अधर्म, सत्य असत्य और अनासक्ति के समन्वय से ही व्यक्ति सुखी हो सकता है। इसी संदर्भ में वैदिक ऋषियों को यह कहना पड़ा कि धन और धन-दान अथवा भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति साथ-साथ होनी चाहिए। धन भी सत्य है और धन दान भी सत्य है। वेदों के अनुसार 100 हाथों के बराबर धन कमाना चाहिए किन्तु एक हजार हाथों से उसका दान भी करना चाहिए। अथर्ववेद: 3.24.5

धन से वैभव बढ़ता है, और धन दान से अभाव मिटता है और अभावों से भुखमरी मिटती है। और जहाँ भुखमरी नहीं होती वहाँ पाप अपराध और दुख पैदा नहीं होते। जहाँ पाप व दुख नहीं होते, वहाँ समस्त पुण्य निवास करते हैं।

"यत्रेन्द्रश्चः वायुश्च सम्यञ्चो चरत सह।
ते ल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते।।"

यजुर्वेदः 20.26

जहाँ पुण्यताओं की गंगा बहती है, वहीं सुखों और प्रियताओं की तरंगें हैं, तो दुखों की खदान भी है। अर्थ और काम में सुख दुख दोनों व्याप्त हैं। परंतु भोगों के धर्मानुकूल सेवन से ही सुख और अधर्मानुकूल से दुख मिलता है। सभी प्रकार के अतिभोग अधर्मानूकूल हैं। यही कारण है कि, अति सर्वत्र वर्जित मानी गई है। वास्तव में जो पुरुष अतिवाद और अभाववाद से अलग हैं, वे ही धर्मात्मा हैं। सत्य क्या है? असत्य क्या है? कर्म क्या हैं अकर्म क्या है? मनुष्य को किन कर्तव्यों का पालन करना चाहिए, और किनका नहीं? यह निर्णय सत्य धर्म या संतुलन शक्ति से ही संभव है। अतः वेदों और स्मृति ग्रंथों के अनुसार मनुष्य को धर्म नियमों या गुणों या कर्तव्य कर्मों को जानने की जिज्ञासा सदैव करनी चाहिए।

"ऋग्वेदः 7.75.12, मनुस्मृतिः 2.14, ऋग्वेदः 10.56.3, 6.4.8 और यजुर्वेदः 4.29 के अनुसार मानव को ऐसे कर्तव्य या धर्म मार्ग पर चलना चाहिए जो सर्वहितकारी हो।" सर्वहित की दृष्टि से उपनिषद् को यह कहना पड़ा कि कर्तव्य या धर्मपालन में कभी भी प्रमाद नहीं करनी चाहिए, तथा सदैव धर्म की ही कामना करनी चाहिए।

"धर्मान्न प्रमादित्यम।।" अलूछा धर्म कामा।।

तैति० उपनिषद्ः 1.11

यही बात बुद्ध ने भी कही है। उनके अनुसार 100 वर्ष के

अधार्मिक जीवन से एक दिन का धर्मयुक्त जीवन श्रेष्ठ है– 'धम्मपद'। सर्वपोषक सत्य धर्म क्या है? वेदों के अनुसार सत्य धर्म तब तक दिखाई नहीं दे सकता, जब तक मनुष्य की आत्मा, अवैध धनार्जन में लिप्त रहती है। वह तभी दृष्टिगोचर होता है, जब वह अपनी आत्मा के ऊपर से स्वर्ण पात्र या धन लोभ के आवरण को उतार कर फेंक देता है।

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यमिहिंत मुखम्।
तत्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्मायदृष्टये॥

ईशोपनिषद्: 15, यजुर्वेद: 40.15

इस प्रकार धर्म कार्य करना सभी को आनंदित करता है, अथवा कर्तव्य बोध से वह सबकी प्यास बुझाता है। वह माता पिता, गुरु शिष्य, पिता–पुत्र एंव राजा प्रजा के कर्तव्यों का बोध कराता हुआ सतत् बहता रहता है। धर्म प्रवाह कर्तव्य रूप में समाज के मन में काम के प्रति श्रद्धा भक्ति उत्पन्न करता है। वह कर्तव्य को उभारकर अधिकार को दबाता है।

धर्म, सूक्ष्म शक्तियों से युक्त ऐसी आध्यात्मिक सत्ता है, जिसका पूजा–पाठ से कोई सम्बन्ध नहीं है। उसका सम्बन्ध आचरण से है। उसमें सुख देने वाली अद्भुत शक्ति है। क्या सुनना क्या नहीं, क्या करना क्या नहीं, क्या खाना क्या नहीं? यह निर्णय करना धर्म का काम है। **धर्म जीवन का सार है।** अत: **जीवन में जो सत्य, सुंदर, शिव, प्रिय और भद्र है, वही धर्म धारा है।** धर्म, ऐसा मत या वस्तु नहीं है, जो छूने से भ्रष्ट होता है। वह ऐसा कोई वस्तु भी नहीं है जिसे जब चाहे, उतार दिया और जब चाहे दूसरा पहन लिया जाये। **वैदिक धर्म, न केवल वैज्ञानिक धर्म है, वरन् वह ज्ञान विज्ञान से भी उत्कृष्ट है।**

धर्म एक ऐसी सत्ता है, जिसकी उड़ान आदर्श तक है, तो नींव यथार्थ में है। संसार और उसके सुख यथार्थ है। दुख व मृत्यु भी यर्थाथ है। दुख कभी न हो, सदैव सुख ही सुख रहे, यह

इसी में भला तेरा, अंधविश्वास छोड़ दे।





आदर्श है। अमृत या जीवन यर्थाथ है, तो मृत्यु भी यथार्थ या स्वाभाविक है। किन्तु मृत्यु कभी न हो, आदमी सदैव अमर रहे, यह एक काल्पनिक उच्चादर्श है। धर्म यथार्थ और आदर्श का ऐसा संयुक्त रसायन है, जो मृत्यु के दुख को अमृत या सोमरस में बदल देता है। अमृत का अर्थ सदैव किसी एक ही अवस्था में रहने का नाम नहीं है जो किसी भी एक अवस्था में रह सके। अवस्थायें बदलती हैं, रूप बदलते हैं, बदलते रहेंगे, परन्तु पदार्थों और आत्माओं के जो मूल गुण धर्म हैं, वे अपरिवर्तनीय और अमृत हैं। इसी अमृत रस का दर्शन धर्म युक्त विज्ञान द्वारा किया जा सकता है।

नारी का अंधविश्वास

ऊँची शिक्षा पा आज नारी विदूषी बनी है।
विज्ञान पढ़ कर भी अंधविश्वास में जी रही है।।
नारी अब भी अंधविश्वास में जी रही है।
अज्ञान से अज्ञान का विष पी रही है।
जीवन के सभी क्षेत्रों में नारी बढ़ी है।
मगर अंधविश्वास में वहीं की वहीं खड़ी है।।
शिक्षा हो या राजनीति नारी जूझ रही है।
मंगल, शनि, राहू, केतु फिर भी पूज रही है।।
मानवता के भविष्य का, तुझ पे बोझ भारी है।
विचारों में क्रांति ला व्यर्थ रूढ़ियाँ तोड़ दे।।
इसी में भला तेरा, अंधविश्वास छोड़ दे।





महर्षि दयानन्द वचनामृत

धर्म—धर्म उसी को कहते हैं, जिसके करने से शरीर, आत्मा व राष्ट्र की उन्नति हो तथा जिसके करने से पूर्व, मध्य अथवा पश्चात् भय, शंका अथवा लज्जा की अनुभूति न हो।

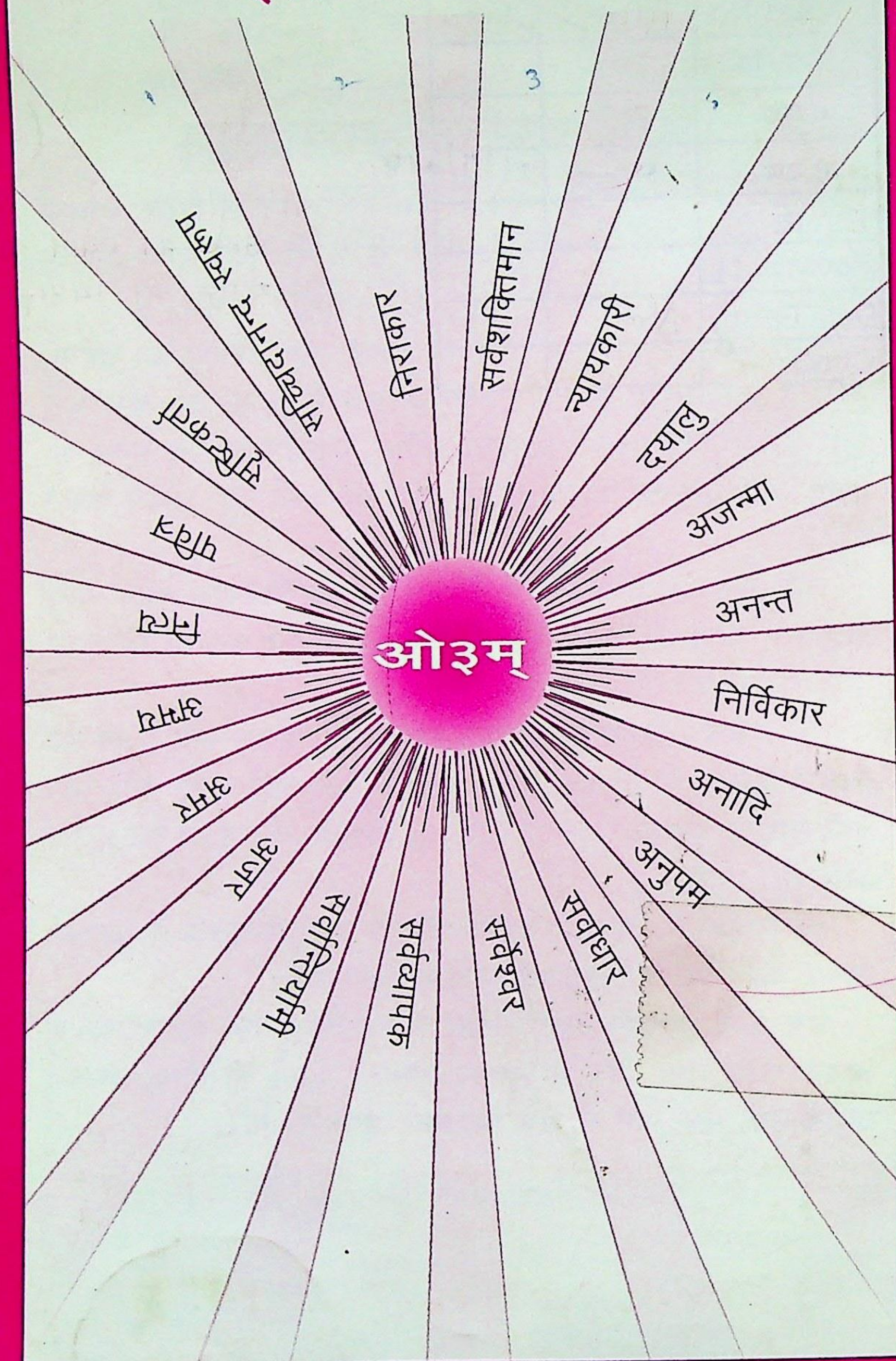
धर्म और अधर्म—जो पक्षपात रहित न्याय, सत्य का ग्रहण, असत्य का सर्वथा परित्याग रूप आचार है, उसी का नाम धर्म और इससे विपरीत जो पक्षपात सहित, अन्यायाचरण, सत्य का त्याग और असत्य का ग्रहणरूप कर्म है, उसी को अधर्म कहते हैं।

जब मनुष्य धार्मिक होता है, तब उसका विश्वास और मान्य शत्रु भी करते हैं। जब अधार्मिक होता है, तब उसका विश्वास और मान्य मित्र भी नहीं करते हैं।

सब जीव स्वभाव से ही सुख-प्राप्ति की इच्छा और दुःख का वियोग करना चाहते हैं। परन्तु जबतक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोड़ते, तब तक उनको सुख का मिलना और दुःख का छूटना असम्भव होगा।

जो व्यक्ति संसार का जितना अधिक उपकार करता है, उसको ईश्वर की ओर से उतना ही आनन्द मिलता है।

हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे भी होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब मिलकर प्रीति से करें।


ईश्वर का सच्चा स्वरुप
ओ३म्
सच्चिदानन्द स्वरूप
निराकार
सर्वशक्तिमान
न्यायकारी
दयालु
अजन्मा
अनन्त
निर्विकार
अनादि
अनुपम
सर्वाधार
सर्वेश्वर
सर्वव्यापक
सर्वान्तर्यामी
अजर
अमर
अभय
नित्य
पवित्र
सृष्टिकर्ता